"भारत जिन बातों का समर्थक है—जैसे शान्ति, तटस्था और विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था वाले राष्ट्रों के शान्ति-पूर्ण सहअस्तित्व – उन पर आघात पहुँचाने के लिए चीन ने सीमा सम्बन्धी मतभेदों का एक बहाने के रूपमें इस्तेमाल किया। चीन और भारत के संघर्ष सीमान्त के पर्वतीय प्रदेशों में सीमा-निर्धारण विषयक मतभेदों से ही सम्बद्ध नहीं हैं; ये शान्ति तथा शान्तिपूर्ण तरीकों और तटस्थता तथा विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था वाले देशों के शान्तिपूर्ण सहअस्तिव के सिद्धान्तों को एक चुनौती हैं। इस प्रकार, यह चीनी खतरा एशिया और अफ्रीका के उन देशों के लिए भी उतना ही बड़ा है, जो मुक्ति और स्वाधीन रूप से अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार विकास-पथ पर बढ़ रहे हैं।"

प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरु

हिमालय की आग

राष्ट्रीय-चेतना का प्रतीक

•

विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

HIMALAYA KI AAG

By

VINDHYACHAL PRASAD GUPTA

Price Rs. 3.50 n.P.

November. 1963

प्रकाशक :

सुभाष पुस्तक मन्दिर

बाँसफाटक,

वाराणसी।

नवम्बर, १९६३

संस्करण—प्रथम

चित्रकार—कांजीलाल

मूल्य—३.५० न.पै.

मुद्रक—

महादेव प्रसाद,

दीपक प्रेस

७।२७२ नदेसर, वाराणसी।

चीन के आक्रमण से भारतीय जनता में जो रोष की लहर फैली—आश्चर्य नहीं—उससे घबड़ाकर, चीन ने एक तरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी। पहले राजा के हारने से देश हार जाता था और गणतंत्र में जब तक जनता हार नहीं जाती तब तक हार नहीं होगी।

विस्तारवादी युद्धलोलुप चीन पुनः आक्रमण नहीं करेगा—भला यह कोई कैसे कह सकता है! उसने भारत के मित्रता-प्रस्ताव को ठुकराने वाले पाकिस्तान से साठगांठ कर ली है और युद्ध की तैयारियों में लगा हुआ है।

जिस राष्ट्र की जनता त्याग और बलिदान के लिए सदा तैयार नहीं रहती उसे राष्ट्र की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाती है। त्याग और बलिदान की प्रेरणा संयमी और आत्मनिर्भर बनने तथा अनुशासित रहने और नैतिकता के उच्च आदर्शों के पालन करने से मिलती है।

चीन के विशाल आक्रमण के समय भारत में जो राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र प्रेम की भावना प्रकट हुई उसे सजगता प्रदान करने तथा सदा तैयार रहने की प्रेरणा ही 'हिमालय की आग' के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य है।

'हिमालय की आग' चीनी अजगर की कपटनीति का पर्दाफाश ही नहीं करती, बल्कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति और देश की रक्षा के लिए प्राण उत्सर्ग करने वाले वीर देशभक्तों के साहस और बलिदान की कहानियों द्वारा त्याग और बलिदान की प्रेरणा भी देती है। इसलिए यह पुस्तक देश की रक्षा के लिए सीमा पर डटे हुए वीर सैनिकों, एन. सी. सी. के छात्र तथा छात्राओं, अफसरों, किसानों तथा अन्य सभी वर्ग के नागरिकों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

सुभाष पुस्तक मन्दिर, वाराणसी के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल गुप्त का आभार स्वीकार करता हूँ, जिन्होंने 'हिमालय की आग' के प्रकाशन में उत्साह दिखलाया।

वाराणसी — विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

२५ नवम्बर, १९६२

• अमर भारत

—हे जन्मभूमि भारत, हे कर्मभूमि भारत,
हे वंदनीय भारत, अभिनंदनीय भारत,
जीवन-सुमन चढ़ाकर हम अर्चना करेंगे!
तेरी जनम-जनम हम वंदना करेंगे!

—भारती प्रसाद सिंह

भारत : यह हमारी मातृभूमि,""यह हमारी निर्जीव हड्डियों और अंग-अंग में जीवन फूंक रही है।""आलस्य का युग बीत चला और अब केवल अंधे या किसी भ्रष्ट आत्मा को ही यह नजर नहीं आता होगा कि हमारी मातृभूमि अपनी गहरी और दीर्घ निद्रा से जाग रही है।

कोई भी इसका प्रतिरोध नहीं कर सकता, अब यह कभी भी निद्रा में नहीं डूबेगी, कोई भी बाहरी शक्ति अब इसको आगे बढ़ने से रोक नहीं सकती""""

""प्रत्येक महान आदर्श, जो संसार के किसी कोने में आपको दिखाई पड़ेगा—उसकी स्रोत भारत भूमि है। अनादि काल से भारत, मानव समाज के मूल्यवान आदर्शों का विशाल भण्डार रहा है—इसने स्वयं ऊँचे आदर्शों को जन्म दिया है तथा उन्हें निस्वार्थ रूप से सारे संसार में वितरित किया है।

यही वह जन्म भूमि है, जिसमें से अध्यात्मवाद और दर्शन की धारायें बार-बार प्रवाहित हुई हैं, और दुनिया भर में फैली हैं। यही

—सुरक्षा की दृष्टि से हिमालय उत्तर की तरफ का भारत का प्रचण्ड प्रहरी तथा दुर्गम बुर्ज समझा जाता था। दो हजार मील लम्बी हिमालय पर्वत माला जम्मू व कश्मीर राज्य के गिलगिट जिले से लेकर नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेन्सी (नेफा) के लोहित डिविजन तक फैली हुई है। इसकी चौड़ाई १५० से २०० मील तक है और इसकी कतिपय चोटियाँ बीस हजार फीट से भी अधिक ऊँचाई की हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले भारतीय सीमाओं पर कोई शक्तिशाली विरोधी राष्ट्र नहीं था। परन्तु उसके बाद उस स्थिति में परिवर्त्तन हो गया। पहले पाकिस्तानियों ने जम्मू व काश्मीर राज्य के कुछ हिस्से पर अनधिकृत कब्जा कर लिया, जिसमें उत्तर का सम्पूर्ण गिलगिट जिला तथा लद्दाख जिले की 'स्कर्दू' तहसील शामिल है।

अक्टूबर १९४९ में चीन सरकार की स्थापना हुई। १९५०-५१ में चीनियों ने न केवल तिब्बत को रौंद डाला, वरन् उन्होंने हिमालय के दोनों सिरों, यानी लद्दाख और नेफा में करीब तैंतीस हजार वर्ग मील भारतीय भू-खण्ड को नक्शों पर चीनी क्षेत्र के रूप में दर्शाया। लद्दाख में चीनियों ने लगभग १४,५०० वर्गमील भारतीय क्षेत्र पर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया और नेफा के भी लौंगजू चौकी से भारतीय सन्तरियों को अगस्त, १९५८ में जबरदस्ती हटा दिया।

जिन क्षेत्रों पर चीनियों ने कब्जा किया, उनमें वे काफी सड़कें, हवाई अड्डे आदि बना चुके हैं, जिससे हिमालय की अभेद्यता समाप्त हो गई।

अब भारत को हिमालय से कोई विशेष सुरक्षा नहीं मिलेगी, अपितु स्वयं भारत को ही अब इसकी रक्षा करनी पड़ेगी।

—रामसुमग सिंह

—हट जाएँ विपद्-घटाएँ, स्वच्छ हिमालय हो,
स्वतंत्र्य-सूर्य अपना फिर से चमके उस पर;
हम तब तक चैन न लेंगे जब तक दुश्मन को—
देंगे हम नहीं खदेड़ हिमालय से बाहर।

—डा० बलदेव प्रदाद मिश्र

भारत-चीन सीमा: भारत और तिब्बत की परम्परागत सीमा

पूर्वी क्षेत्र में भारत-चीन सीमा आसाम के उत्तर-पूर्वी सीमान्त अधिकरण और चीन के तिब्बत क्षेत्र को अलग करती है। यह परम्परागत सीमा हिमालय शृंखला के शिखर के बराबर जाती है।

यह पर्वत शृंखला ६५० मील लम्बी है और जयगालाला में भारत, भूटान और तिब्बत के त्रिसंगम से भारत, वर्मा और तिब्बत के त्रिसंगम की १५,२८३ फुट ऊँची चोटी तक है। यह पश्चिमी और मध्य क्षेत्रों की सीमा से अधिक ऊँची और भव्य है। यह भारत में ब्रह्मपुत्र के थाले (वेसिन) को और तिब्बत में सांगपो के थाले को विभाजित करनेवाली पर्वत शृङ्खला है।

इसे सामान्यतः मेकमहान रेखा कहते हैं। इसका नाम ब्रिटेन के सर हेनरी मेकमहान के नाम पर रखा गया है। इस परम्परागत सीमा को औपचारिक रूप देने के लिए १९१३—१४ में शिमला में भारत, तिब्बत और चीन का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें सर मेकमहान ब्रिटेन के प्रतिनिधि थे।

उत्तर-पूर्वी सीमान्त अभिकरण का क्षेत्र कुल ३१ हजार वर्गमील है। यह अर्द्ध-पर्वतीय प्रदेश है और यहाँ से आसाम के मैदानों तक समानन्तर और एक दूसरे को काटती हुई पहाड़ियाँ जाती हैं। पहाड़ियाँ पूर्व-पश्चिम की हिमालय शृंखला के पुश्ते का काम करती हैं और यह हिमालय शृंखला स्वयं तिब्बत के पठार का पुश्ता है। तिब्बत के पठार को दुनिया की छत कहते हैं।

इन पहाड़ियों के कारण इस क्षेत्र में सड़क बनाना बहुत कठिन है और ये पहाड़ियाँ लोहित, दिवाग, दिहांग, सुवनसिरी और कमला आदि नदियों की धाराओं को निश्चित करती हैं।

इस प्रदेश में पश्चिम से पूर्व, मोम्पा, अका, दफला, मिरी, अबोर और मिशमी जातियों के लोग रहते हैं। ये तिब्बतियों से बिल्कुल भिन्न हैं, जो इन्हें लोपा कहते हैं।

ऐसे अत्यधिक प्रमाण हैं जिनसे निर्विवाद रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि उक्त हिमालय श्रृंखला जिसे 'मेक महान रेखा' कहते हैं, भारत और चीन की परम्परागत सीमा है।

यह प्राचीन हिन्दूराज्य कामरूप की सीमा थी। १३ वीं सदी में अहोम जति की कामरूप-विजय के बाद इसका आसाम नाम पड़ा। हिमालय, कामरूप की सीमा था, यह बात समकालीन ग्रन्थों, विदेशी यात्रियों के विवरणों और गैर सरकारी नक्शों से सिद्ध होती है। विष्णु पुराण (तीसरी सदी), ह्यून सांग (७ वीं सदी) और योगिनी पुराण (८ वीं सदी) के कामरूप के वर्णनों में हिमालय को इसकी सीमा बताया गया है।

—१७ वीं सदी की 'आसाम घाटी का राजनीतिक भूगोल' नामक पुस्तक में लिखा है कि अका, दफला और भूटिया जातियाँ अहोम राजाओं को कर देती थीं।

—इटली के एक यात्री इप्पोलितो देसीदेरी ने अपनी तिब्बत-यात्रा (१७१६—१६) के विवरण में लिखा है कि तिब्बत के लोगों का दक्षिण की आदिम जातियों से व्यवहार नहीं था। एक और यात्री होरेसदेल्ला पेन्ना ने लिखा है कि तिब्बत के दक्षिण में लांबु या आदिम जाति क्षेत्र है। पेन्नाने १७२० में तिब्बत की यात्रा की। माइकेल ने भारत के उत्तर पूर्वी सीमान्त की १८८३ की रिपोर्ट में लिखा है कि अबोर प्रदेश की उत्तरी सीमा हिमालय है।

—चीनी ग्रंथों और नकशों में भी भारत की इस सीमा की पुष्टि हुई है। वी त्सांग तुचिह (मध्य तिब्बत का भौगोलिक विवरण) के अनुसार तिब्बत के दक्षिण में लोयु आदिम जातियों का प्रदेश है। चीन के १८८६ के एक और ग्रंथ में लिखा है कि लोयु ब्रिटेन के अधीन है। सम्राट कांग-सी की आज्ञा पर १७११—१७ में ईसाई मिशनरियों और लामाओं ने जो नकशे तैयार किए, उनमें तिब्बत की दक्षिणी सीमा को हिमालय शृंखला के बराबर दिखाया गया है।

—पेकिंग विश्वविद्यालय ने नवम्बर १६२५ में एक नकशा तैयार किया, जिसमें चिंग वंश के समय चीन साम्राज्य की सीमाएँ दिखाई गयी हैं। इन नकशों में भारत की सीमा को हिमालय शृंखला के बराबर दिखाया गया, जो भारत की वास्तविक वर्त्तमान सीमा है।

—२४-२५ मार्च, १६१४ को शिमला सम्मेलन में भारत की सीमा के बारे में, भारत और तिब्बत के बीच औपचारिक समझौता हुआ। इसे भारत और चीन की जुलाई १६१४ की सन्धि में शामिल किया गया। भारत के उत्तर-पूर्वी सीमान्त के नकशे पर यह सीमा-रेखा दिखाई गई। यह नकशा कागज के दो तावों पर बना था और इसमें ८ मील दूरी १ एक इंच में दिखाई गई है। उक्त सन्धि के दस्तावेजों के साथ ही इस नकशे की एक प्रति लगाई गई थी।

तिब्बत के प्रतिनिधि ने एक पत्र लिख कर इस सीमा रेखा के सम्बन्ध में तिब्बत सरकार की स्वीकृति जाहिर की थी। ब्रिटेन और तिब्बत के प्रतिनिधियों ने चीन के प्रतिनिधि के पीठ पीछे यह सीमारेखा निर्धारित नहीं की। ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने १७ फरवरी, १६१४ को सम्मेलन में 'तिब्बत की ऐतिहासिक सीमा' शीर्षक नकशा पेश किया। इस नकशे में यह सीमा दिखाई गई थी। सन्धि के दस्तावेजों के साथ जो नकशा लगाया गया, उस पर यह रेखा लाल रंग में दिखाई गई थी। इस पर १७ अप्रैल,

१६१४ को भारत, तिब्बत और चीन के प्रतिनिधियों ने और फिर तीन जुलाई, १६१४ को भारत और तिब्बत के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए।

वैसे मार्च १६१४ के भारत तिब्बत करार पर चीन की सहमति आवश्यक भी नहीं थी। इससे पहले तिब्बत ने ऐसी कई सन्धियाँ की थीं, जिन्हें सम्बन्धित सरकारों ने केवल स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि अनेकों दशकों से लागू वे भी थीं।

—लद्दाख और कश्मीर से तिब्बत की १८४२ की सन्धि में तिब्बत की परम्परागत पश्चिमी सीमा की पुष्टि की गई और व्यापारिक सम्बन्ध को नियमित किया गया। यह सन्धि हमारे समय तक लागू रही।

—इसी प्रकार १८५६ की नेपाल तिब्बत-सन्धि १०० एक सौ वर्ष तक लागू रही। इस सन्धि का स्थान १६५६ की चीन—नेपाल-सन्धि ने लिया।

—'मेक महान रेखा' तक के पूरे प्रदेश पर अहोम राजाओं और बाद में ब्रिटिश सरकार का शासन रहा। इस क्षेत्र की आदिम जातियाँ पूरी तरह से अहोम राजाओं के अधीन थीं।

—अंगरेजी राज के समय, शुरू से ही आदिम जाति क्षेत्र पोलिटिकल एजेण्टों या पास के जिलों के डिप्टी कमिश्नरों के अधीन रखा गया। ये अफसर इस क्षेत्र में कानून व्यवस्था रखते थे, विभिन्न आदिम जातियों के सम्बन्धों को नियमित करते थे और उन्हें दीवानी और फौजदारी मुकदमों की सुनवाई का अधिकार था।

जब भारत के अन्य भागों में जन गणना होती थी, तो इन आदिम जाति क्षेत्रों में भी जनगणना की जाती थी।

ब्रिटिश सरकार की नीति सामान्यतः आदिम जातियों के मामेल

में हस्तक्षेप न करने की थी अतः वहाँ शेष भारत की तरह व्यवस्थित शासन कायम नहीं किया गया।

१६१२ में आदिम जाति क्षेत्र को तीन सीमान्त इलाकों में विभाजित किया गया। प्रत्येक इलाके को एक पोलिटिकल अफसर के अधीन रखा गया। १६१६ में इस क्षेत्र को दो इलाकों में बाँटा गया। १६३५ में इन्हें पृथक क्षेत्र घोषित किया गया और इनकी विशेष जिम्मेदारी गवर्नर को सौंपी गई। इन्हें विधान सभा और मन्त्रिमण्डल के अधीन नहीं किया गया।

—आज संवैधानिक दृष्टि से यह क्षेत्र आसाम का भाग है, पर भारत का विदेश मन्त्रालय आसाम के राज्यपाल की मार्फत इनका शासन चलता है। आसाम के राज्यपाल, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में काम करते हैं। इन क्षेत्रों का प्रशासनिक अध्यक्ष शिलांग स्थित कमिश्नर है।

इस पूरे क्षेत्र को पाँच सीमान्त क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक डिवीजन एक पोलिटिकल अफसर के अधीन है। इसके अलावा इञ्जीनियरी, वन, चिकित्सा, शिक्षा और कृषि विभागों के जिला अफसर भी हैं। इनके कार्यालय पोलिटिकल अफसर के कार्यालय के ही अंग हैं। प्रत्येक डिविजन कई सब डिवीजनों में बाँटा गया है, जो सहायक पोलिटिकल अफसरों के अधीन है। सब-डिविजनों को सर्किलों में विभाजित किया गया है। ये सर्किल बेस-सुपरिंटेंडेंटों के अधीन हैं।

—भारत के सरकारी नकशों में जैसे भारतीय सव द्वारा १८६५ में प्रकाशित और भारत सरकार द्वारा १६१६ में प्रकाशित नकशों में, उत्तर पूर्वी सीमान्त अभिकरण का पूरा आदिम क्षेत्र भारत का भाग दिखाया गया है।

—चीनी जहाँ अपनी सीमा बताते हैं, उसके अनुसार पूरा

सीमान्त अभिकरण तिब्बत में चला जाता है, लेकिन अपने दावों को सिद्ध करने लिए उन्होंने जो सबूत दिये हैं, वे उस क्षेत्र के लगभग दसवें हिस्से के तीन छोटे छोटे इलाकों के बारे ही हैं। पर ये प्रमाण भी बहुत कम और संदिग्ध हैं। मोनयुल यानी पश्चिमी इलाके के बारे में चीन ने सिर्फ यह प्रमाण दिया है कि यह क्षेत्र दलाईलामा की आध्यात्मिक सत्ता को मानता था और यहाँ से धार्मिक कार्यों के लिए धन इकट्ठा किया जाता था, पर यह धन लोग स्वेच्छा से ही देते थे।

बीच के इलाके, जिसे लायुल कहते हैं, के बारे में चीनियों ने सिर्फ इतना कहा है कि आरंभ में इस इलाके पर उनका शासन था। सुदूर पूर्व के लायुल इलाके पर चीन के शासक आज अपना दावा कर रहे हैं, पर १९१४ के शिमला सम्मेलन में चीनी प्रतिनिधि ने स्पष्टरूप से कहा था कि लायुल का निचला हिस्सा तिब्बत के अधीन नहीं।

—जब १९१४ के शिमला-सम्मेलन में उत्तर-पूर्वी सीमा निर्धारित की गई, बर्मा भारत का अंग था। बर्मा में भी मेकमहोन रेखा उसकी उत्तरी सीमा है, चीनियों ने बर्मा में 'मेकमहोन रेखा' के हिस्से को बिना किसी परिवर्तन के साथ परम्परागत और व्यवहार संगत अंतर्राष्ट्रीय सीमा माना है पर इसी रेखा को वे भारत-चीन सीमा के रूप में गैर-कानूनी और साम्राज्यवाद की देन कहते हैं।

चीनियों ने भारत पर यह भी आरोप लगाया है कि उसने दो क्षेत्रों में मेकमहोन रेखा को आगे बढ़ा कर तिब्बत का इलाका दबा लिया है। चीन का यह आरोप बिल्कुल असंगत और निराधार है। उक्त दोनों क्षेत्रों में भारतीय सीमा-सबसे ऊँची जल विभाजक पर्वत-शृंखला के बराबर है, जिसके आधार पर भारत की उत्तरी सीमा सदा से मान्य रही है।

—डा० के० गोपालाचारी
(विधि मंत्रालय, भारत सरकार)

—मैकमोहन की रेखा आधारित है जिस पर—
खींची निसर्ग ने वह हिमगिरि लक्ष्मण रेखा,
राष्ट्रीय संधि-पत्रों ने उसको मान दिया,
इतिहास सनातन ने साक्षी बन कर देखा !
उस सीमा को, उस लक्ष्मण रेखा को, बल से—
चीनी शासन है आज मिटाने को तत्पर;
जो जग-विद्रावण रावण से हो सका नहीं—
वह कर पाएगा कलियुग का निशिचर क्यों कर !

—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

विस्तारवादी चीन का विश्वासघात

८ सितम्बर १९६२ को थागला पहाड़ी के पास चीनी सैनिकों ने मैकमहान रेखा पार कर, भारत भूमि में प्रवेश किया।

—इक दागबाज पड़ोसी का यह सफ्फ़ाक कदम,
यह कदम, खून में लिथड़ा हुआ नापाक कदम !
यह कदम जिसका हर इक नक्शे-कदम मुजरिम है,
यह जो आमादा है बस खून पे पलने के लिए !
दोस्तो, आओ कदम अपने मिला लें हम लोग !

—"ज़फ़र" गोरखपुरी

अक्टूबर १६४६ में जनवादी चीनी गणतंत्र की घोषणा की गई। भारत सरकार ने चीन गणतन्त्र को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान की। भारत पहला देश था जिसने चीन की साम्यवादी सरकार को सर्वप्रथम मान्यता प्रदान की। संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन को आदरयुक्त स्थान दिलाने के प्रयत्न में भारत अग्रणी रहा।

—१ फरवरी' १६५१ को भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में चीन को कोरिया में आक्रमणकारी सिद्ध करने के विरुद्ध मत दिया और २५ अक्टूबर १६५२ को भारत ने फिर जोर लगाया कि सयुक्त राष्ट्र संघ में चीन का प्रतिनिधित्व करने का अधिकारी साम्यवादी चीन ही है।

—२६ अप्रैल १६५४ को भारत तथा तिब्बत में व्यापार सम्बन्ध कायम रखने के प्रश्न पर चीन-भारत समझौता हुआ। 'अक्टूबर १६५० में चीनी सेना तिब्बत में घुस गई थी।' भारत ने तिब्बत में अपने क्षेत्रातीत अधिकार का त्याग किया और तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया। समझौता के अंतर्गत दोनों देशों ने पंचशील के प्रति आस्था प्रकट की। शांति के साथ अच्छे पड़ोसियों की तरह रहेंगे।

—२५ जून, १६५४ को चाओ एन-लाई दिल्ली पधारे। 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा लगा। भारत ने सच्चे हृदय से उनका स्वागत किया। २८ जून को भारत तथा चीन के प्रधान मन्त्रियों का संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें पंचशील के सिद्धान्तों को दुहराते हुए घोषणा की गई थी—'यदि ये सिद्धान्त विभिन्न देशों के बीच तथा सामान्य रूप से अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों पर लागू किये जायें तो ये शांति और सुरक्षा के लिए दृढ़ आधार प्रस्तुत करेंगे तथा इस समय मौजूदा भय और शंकाएं विश्वास के भाव में बदल जायँगी।' भारत और चीन के प्रधान मन्त्रियों ने भारत और चीन की मैत्री में

विश्वास प्रकट किया जो विश्व शांति और इन देशों तथा एशिया के अन्यदेशों के शांतिपूर्ण विकास में योग देगी।

चाओ एन-लाई के चीन लौटने के कुछ दिनों के बाद ही (१७ जुलाई) चीन ने प्रथम बार भारतीय प्रदेश पर अपना दावा उपस्थित किया: बाराहोती (उत्तर प्रदेश) में भारतीय सैनिकों की उपस्थिति का विरोध किया। भारत सरकार ने समझा कि अज्ञान वश यह दावा प्रस्तुत किया गया है, किन्तु २७ अगस्त को ही चीनी अधिकारियों ने बाराहोती में प्रवेश करने का प्रयास किया।

यह जो मग़रूर है, जिद्दी है, सितम पेशा है,
यह जो राजी नहीं अतवार बदलने के लिए
यह जो बेचैन है वहशत में दरिंदों की तरह,
आदमियत की जवाँ लाश पे चलने के लिए।

—"जफ़र"

—१८ अक्टूबर, ५४ को दोनों की मित्रता अटूट करने के उद्देश्य से भारत के प्रधान मंत्री चीन गये। नेहरू जी ने उन नक्शों के बारे में चर्चा की जिनमें भारतीय भूभाग को चीन के अन्तर्गत दिखलाया गया है। चाओ एन-लाई ने उत्तर में कहा कि 'ये नक्शे कोमितांग सरकार के समय के हैं जिन्हें चीनी गणराज्य की सरकार को सुधारने का अवकाश नहीं मिला।

उस समय नेहरूजी को अनुमान भी नहीं था कि चीनी अजगर एशिया को निगलने की योजना बना रहा है

—१८ अप्रैल, १९५५ को बांडुंग-सम्मेलन में भारत ने चीन की मित्रता का निर्वाह किया : मित्रता के साथ पड़ोसी की तरह रहने के लिए। बर्मा, लंका, भारत, पाकिस्तान तथा हिन्देशिया द्वारा आयोजित उस अफ्रेशियाई सम्मेलन में चीन भी सम्मिलित हुआ। चाओ

एन-लाई की, एशियाई और अफ्रीकी नेताओं से सम्पर्क स्थापित करने में, नेहरूजी ने सहायता की। 'जनवादी चीनसरकार' के चीन का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दोहराया गया।

और बाराहोती में चीनियों ने चुपके-चुपके प्रवेश किया। २८ जून' ५५ को चीनियों के अनधिकारिक प्रवेश के सम्बन्ध में भारत ने विरोध पत्र भेजा। उसके बाद १५ सितम्बर' ५५ को चीनी सैनिकों की एक टुकड़ी भारत-तिब्बत सीमा के दक्षिण दस मील आगे बढ़ कर, दामजन (उत्तर प्रदेश) में घुस आई।

—भारत का कैलाश और भारत का मानसरोवर,
देवभूमि पर चढ़ आए हैं देखो, फिर रजनी चर!
इन्हें बताओ गंगा की लहरें नागिन हो जातीं,
इन्हें बताओ वे दुश्मन को अनायास डस खातीं।
भ्रम था, शायद समझोगे तुम पंचशील की भाषा,
भ्रम था, शायद तुमको भी है शाँति-प्रीत अभिलाषा।

—उमाकांत मालवीय

—२० सितम्बर, ५५ को भारत ने जनवादी चीन को संयुक्त-राष्ट्र संघ में प्रवेश कराने के लिए फिर प्रयत्न किया। और २८ अप्रैल १६५६ को एक सशस्त्र चीनी दल उत्तर प्रदेश में निलंग से आधा-मील पूरब पहुँचा तथा चौकी स्थापित कर, जम गया।

भारत सरकार ने, २ मई, ५६ को, चीनी सैनिकों की घुसपैठ के विरुद्ध विरोध पत्र भेज कर चीन सरकार का ध्यान आकर्षित किया तो २६ जुलाई को उत्तर मिला कि 'बाराहोती' भारतीय क्षेत्र नहीं, किंतु चीनी क्षेत्र है और तुनजूनला सीमान्तर दर्रा नहीं, जिससे होकर चीनी भारत में घुसे थे।

और चीनी अजगर सरकता गया। १ सितम्बर' ५६ को चीनी सैनिकों का एक दल शिपकीदर्रा पार कर, भारत में घुसा। १०

विश्वास प्रकट किया जो विश्व शांति और इन देशों तथा एशिया के अन्यदेशों के शांतिपूर्ण विकास में योग देगी।

चाओ एन–लाई के चीन लौटने के कुछ दिनों के बाद ही (१७ जुलाई) चीन ने प्रथम बार भारतीय प्रदेश पर अपना दावा उपस्थित किया: बाराहोती (उत्तर प्रदेश) में भारतीय सैनिकों की उपस्थिति का विरोध किया। भारत सरकार ने समझा कि अज्ञान वश यह दावा प्रस्तुत किया गया है, किन्तु २७ अगस्त को ही चीनी अधिकारियों ने बाराहोती में प्रवेश करने का प्रयास किया।

यह जो मग़रूर है, जिद्दी है, सितम पेशा है,
यह जो राजी नहीं अतवार बदलने के लिए
यह जो बेचैन है वहशत में दरिंदों की तरह,
आदमियत की जवाँ लाश पे चलने के लिए।
—"जफ़र"

—१८ अक्टूबर, ५४ को दोनों की मित्रता अटूट करने के उद्देश्य से भारत के प्रधान मंत्री चीन गये। नेहरू जी ने उन नक्शों के बारे में चर्चा की जिनमें भारतीय भूभाग को चीन के अन्तर्गत दिखलाया गया है। चाओ एन–लाई ने उत्तर में कहा कि 'ये नक्शे कोमितांग सरकार के समय के हैं जिन्हें चीनी गणराज्य की सरकार को सुधारने का अवकाश नहीं मिला।

उस समय नेहरूजी को अनुमान भी नहीं था कि चीनी अजगर एशिया को निगलने की योजना बना रहा है

—१८ अप्रैल, १९५५ को बांडुंग-सम्मेलन में भारत ने चीन की मित्रता का निर्वाह किया : मित्रता के साथ पड़ोसी की तरह रहने के लिए। बर्मा, लंका, भारत, पाकिस्तान तथा हिन्देशिया द्वारा आयोजित उस अफ्रेशियाई सम्मेलन में चीन भी सम्मिलित हुआ। चाओ

एन-लाई की, एशियाई और अफ्रीकी नेताओं से सम्पर्क स्थापित करने में, नेहरूजी ने सहायता की। 'जनवादी चीनसरकार' के चीन का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दोहराया गया।

और बाराहोती में चीनियों ने चुपके-चुपके प्रवेश किया। २८ जून' ५५ को चीनियों के अनधिकारिक प्रवेश के सम्बन्ध में भारत ने विरोध पत्र भेजा। उसके बाद १५ सितम्बर' ५५ को चीनी सैनिकों की एक टुकड़ी भारत-तिब्बत सीमा के दक्षिण दस मील आगे बढ़ कर, दामजन (उत्तर प्रदेश) में घुस आई।

—भारत का कैलाश और भारत का मानसरोवर,
देवभूमि पर चढ़ आए हैं देखो, फिर रजनी चर!
इन्हें बताओ गंगा की लहरें नागिन हो जातीं,
इन्हें बताओ वे दुश्मन को अनायास डस खातीं।
भ्रम था, शायद समझोगे तुम पंचशील की भाषा,
भ्रम था, शायद तुमको भी है शाँति-प्रीत अभिलाषा।
—उमाकांत मालवीय

—२० सितम्बर, ५५ को भारत ने जनवादी चीन को संयुक्त-राष्ट्र संघ में प्रवेश कराने के लिए फिर प्रयत्न किया। और २८ अप्रैल १६५६ को एक सशस्त्र चीनी दल उत्तर प्रदेश में निलंग से आधा-मील पूरब पहुँचा तथा चौकी स्थापित कर, जम गया।

भारत सरकार ने, २ मई, ५६ को, चीनी सैनिकों की घुसपैठ के विरुद्ध विरोध पत्र भेज कर चीन सरकार का ध्यान आकर्षित किया तो २६ जुलाई को उत्तर मिला कि 'बाराहोती' भारतीय क्षेत्र नहीं, किंतु चीनी क्षेत्र है और तुनजूनला सीमान्तर दर्रा नहीं, जिससे होकर चीनी भारत में घुसे थे।

और चीनी अजगर सरकता गया। १ सितम्बर' ५६ को सैनिकों का एक दल शिपकीदर्रा पार कर, भारत में घुसा। १०

विश्वास प्रकट किया जो विश्व शांति और इन देशों तथा एशिया के अन्यदेशों के शांतिपूर्ण विकास में योग देगी।

चाओ एन–लाई के चीन लौटने के कुछ दिनों के बाद ही (१७ जुलाई) चीन ने प्रथम बार भारतीय प्रदेश पर अपना दावा उपस्थित किया: बाराहोती (उत्तर प्रदेश) में भारतीय सैनिकों की उपस्थिति का विरोध किया। भारत सरकार ने समझा कि अज्ञान वश यह दावा प्रस्तुत किया गया है, किन्तु २७ अगस्त को ही चीनी अधिकारियों ने बाराहोती में प्रवेश करने का प्रयास किया।

यह जो मग़रूर है, जिद्दी है, सितम पेशा है,
यह जो राजी नहीं अतवार बदलने के लिए
यह जो बेचैन है वहशत में दरिंदों की तरह,
आदमियत की जवाँ लाश पे चलने के लिए।
—"जफ़र"

—१८ अक्टूबर, ५४ को दोनों की मित्रता अटूट करने के उद्देश्य से भारत के प्रधान मंत्री चीन गये। नेहरू जी ने उन नक्शों के बारे में चर्चा की जिनमें भारतीय भूभाग को चीन के अन्तर्गत दिखलाया गया है। चाओ एन–लाई ने उत्तर में कहा कि 'ये नक्शे कोमितांग सरकार के समय के हैं जिन्हें चीनी गणराज्य की सरकार को सुधारने का अवकाश नहीं मिला।

उस समय नेहरूजी को अनुमान भी नहीं था कि चीनी अजगर एशिया को निगलने की योजना बना रहा है

—१८ अप्रैल, १९५५ को बांडुंग-सम्मेलन में भारत ने चीन की मित्रता का निर्वाह किया : मित्रता के साथ पड़ोसी की तरह रहने के लिए। वर्मा, लंका, भारत, पाकिस्तान तथा हिन्देशिया द्वारा आयोजित उस अफ्रेशियाई सम्मेलन में चीन भी सम्मिलित हुआ। चाओ

—उसके पश्चात् लद्दाख के फोर्गाकगढ़ (खुर्नाक किला) पर चीनियों ने अधिकार कर लिया। भारत सरकार ने २ जुलाई, ५८ को विरोध पत्र भेजा तथा १४ जुलाई को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में, *भारत ने सुझाव दिया कि महासभा चीन के प्रतिनिधि के प्रश्न* पर विचार करे।

—अकसाई चीन (अक्षय चिन) में गश्त लगा रहे एक भारतीय गश्ती दल को चीनी सैनिकों ने गिरफ्तार कर लिया और पाँच सप्ताह तक हिरासत में उन्हें तरह तरह की यातनाएं देते रहे। और सितम्बर, ५८ में ही बहुसंख्यक चीनी बाराहोती में घुस आये। २७ सितम्बर को चीनी सैनिकों ने 'नेफा' के लोहित डिवीजन में भी प्रवेश किया।

—लद्दाख के अक्षय चिन क्षेत्र में चीन द्वारा मोटर मार्ग का निर्माण होने लगा। भारत सरकार ने २८ अक्टूबर, ५८ को विरोध पत्र भेजा। चीनियों ने लपथाल और सागचामाला (उत्तर प्रदेश) में चौकियों की स्थापना की। भारत ने सैनिकों को वापस बुलाने की मांग, चीन से, की। १४ दिसम्बर, ५८ को नेहरू जी ने चाओ एन-लाई को पत्र लिखकर, चीन की एक सरकारी पत्रिका में भारत-चीन सीमा सम्बन्धी छपे गलत विवरण की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। तथा १७ दिसम्बर को भारत सरकार ने विमान द्वारा सीमा उलंघन की ओर चीन का ध्यान आकर्षित किया और भविष्य में ऐसा अनुचित कदम नहीं बढ़ाने के लिए अनुरोध भी किया।

—१७ जनवरी १९५९ को चीनियों के अवैध प्रवेश के विरोध में भारत ने चीन को पत्र लिखा। २३ जनवरी, ५९ को चाओ एन-लाई ने नेहरू जी को पत्र लिखकर, सरकारी तौर पर इस बात को मानने से इनकार कर दिया कि दोनों देशों के बीच परम्परागत कोई सीमा रेखा है।

सितम्बर को उसी गश्ती घूमता चीनी दल फिर भारत-भूमि पहुँचा। फिर उसी शिपकी दर्रे के गश्ती एक चीनी गश्तीदल, २० सितम्बर को हुपसांगखड तक चला आया। एक भारतीय गश्ती दल से उनका सामना हुआ तो चीनी शस्त्र प्रयोग की धमकी देने लगे।

—चीन के प्रधानमंत्री चाओ एन-लाई २८ सितम्बर' ५६ को नई दिल्ली आये। श्री नेहरू ने अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् भारत चीन सीमांत का उल्लेख किया। इस अवसर पर उनके साथ जो वार्त्ता हुई उसमें यह स्वीकार किया गया कि दोनों देशों के बीच 'सीमा विवाद' नाम की कोई चीज नहीं है। जो कुछ थोड़ी-बहुत मामूली समस्यायें हैं वे मैत्रीपूर्ण वार्त्ता द्वारा हल कर ली जा सकती हैं। चीन के प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत और वर्मा—दोनों के ही—साथ चीन मैकमहान रेखा को सीमारेखा मानने के लिए तैयार है।

—यातुङ्ग में भारत के प्रयोग में आनेवाली या अधिकार में जो भी भूमि रही उसे भारत सरकार ने, ५ जून, ५७ को, चीन सरकार को सौंप दिया।

—३ अक्टूबर' १९५७ को एक चीनी दल भारत के 'नेफा' क्षेत्र के लोहित डिविजन में टोह लेते वालोंग तक पहुँचा था।

—भारत सरकार के अनुरोध पर, बाराहोती के प्रश्न पर, अप्रैल–मई १९५८ में दोनों देशों के प्रतिनिधियों के बीच बातचीत हुई। प्रकट हुआ कि चीन सरकार को स्वयं उस क्षेत्र के सम्बन्ध में ठीक-ठीक जानकारी नहीं है जिस पर वह दावा कर रही है। भारत सरकार ने सुझाव दिया कि समझौता होने तक दोनों देशों को उक्त क्षेत्र से सैनिक अथवा असैनिक कर्मचारी नहीं भेजने चाहिए। चीन ने केवल सशस्त्र सैनिक नहीं भेजने की शर्त ही मानी।

—उसके पश्चात् लद्दाख के कोर्णाकगढ़ (खुर्नाक किला) पर चीनियों ने अधिकार कर लिया। भारत सरकार ने २ जुलाई, ५८ को विरोध पत्र भेजा तथा १४ जुलाई को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में, भारत ने सुझाव दिया कि महासभा चीन के प्रतिनिधि के प्रश्न पर विचार करे।

—अकसाई चीन (अखय चिन) में गश्त लगा रहे एक भारतीय गश्ती दल को चीनी सैनिकों ने गिरफ्तार कर लिया और पाँच सप्ताह तक हिरासत में उन्हें तरह तरह की यातनाएं देते रहे। और सितम्बर, ५८ में हो बहुसख्यक चीनी बाराहोती में घुस आये। २७ सितम्बर को चीनी सैनिकों ने 'नेफा' के लोहित डिवीजन में भी प्रवेश किया।

—लद्दाख के अक्षय चिन क्षेत्र में चीन द्वारा मोटर मार्ग का निर्माण होने लगा। भारत सरकार ने १८ अक्टूबर, ५८ को विरोध पत्र भेजा। चीनियों ने लपथाल और सागचामाला (उत्तर प्रदेश) में चौकियों की स्थापना की। भारत ने सैनिकों को वापस बुलाने की मांग, चीन से, की। १४ दिसम्बर, ५८ को नेहरू जी ने चाओ एन-लाई को पत्र लिखकर, चीन की एक सरकारी पत्रिका में भारत-चीन सीमा सम्बन्धी छपे गलत विवरण की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। तथा १७ दिसम्बर को भारत सरकार ने विमान द्वारा सीमा उलंघन की ओर चीन का ध्यान आकर्षित किया और भविष्य में ऐसा अनुचित कदम नहीं बढ़ाने के लिए अनुरोध भी किया।

—१७ जनवरी १९५९ को चीनियों के अवैध प्रवेश के विरोध में भारत ने चीन को पत्र लिखा। २३ जनवरी, ५९ को चाओ ने नेहरू जी को पत्र लिखकर, सरकारी तौर पर इस बात ... कर दिया कि दोनों देशों के बीच परम्परागत

सभी आश्वासनों से मुकर कर तथा १९५४ के समझौते का उलंघन करते हुए, इसी पत्र में पहली बार चीन ने भारत की ५० पचास हजार वर्गमील भूमि पर अपना दावा उपस्थित किया।

—फाहियान के वंशधर
हिमालय के नीचे आयेंगे इधर
पढ़ायेंगे हमको लंकावतार-सूत्र;
लड़ेगा आकर चचाजाद भाइयों से
डा० कोटणीस का चीनी पुत्र!
कहा था कभी, कंफ्यूशियस के बेटों ने—
नमो बुद्धायः बुद्धं शरणं गच्छामि!
चीख रहे वही अब जोरों से—
नमो युद्धायः युद्धं शरणं गच्छामि!
—नागार्जुन

चीनियों के अत्याचार से क्षुब्ध, मौत के घेरे से निकलकर, दलाई-लामा ने ३१ मार्च' ५९ को भारत में प्रवेश किया। भारत सरकार ने तिब्बत में भारतीय व्यापारियों तथा यात्रियों के कार्य में पैदा की गई कठिनाइयों की ओर चीन सरकार का ध्यान दिलाया—११ जुलाई, ५९ को। १४ जुलाई को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में, भारत ने चीन के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करने का सुझाव दिया।

—२८ जुलाई, ५९ को लद्दाख के पांगोंग झील के क्षेत्र में चीनी सैनिकों का एक दस्ता बलपूर्वक घुस आया। भारतीय पुलिस के ६ कर्मचारियों को वे पकड़ ले गये और स्पांगुर में उन्होंने शिविर स्थापित किया। 'नेफा' क्षेत्र के खिजमेन में ७ अगस्त को एक सशस्त्र चीनी-दल घुस आया। २५ अगस्त को एक बड़े चीनी दल

ने नेफा के सुबनसिरी डिवीजन में प्रवेश कर, भारतीय सैनिकों पर गोली चलायी और लांगजू में भारतीय सीमान्त चौकी पर अधिकार कर लिया।

—चीनी सैनिक दक्षिणी लद्दाख में २० अक्टूबर' ५६ को घुस आये। वे चांगचेनमो घाटी के भारतीय क्षेत्र में ४० मील आगे तक बढ़ आये। भारतीय गश्ती दल का सामना हुआ तो आततायी चीनियों ने गोलियाँ चला कर, नौ भारतीयों की हत्या कर दी और शेष दस को बन्दी बना लिया। निर्मम अमानुषिक अत्याचार के पश्चात् भारत सरकार के विरोध और रिहाई की मांग पर उन्होंने भारतीय बन्दियों को मुक्त किया।

—चीनियो, कुछ तुम्हें गैरत भी न आयी सद् हैफ,
याद है हमने कहा था तुम्हें भाई, सद् हैफ,
मादरे हिन्द है, रिश्ते में तुम्हारी माँ भी,
माँ के माथे पे ही बन्दूक चलायी, सद् हैफ।

—इसाक प्रदीव

—सीमा-संघर्ष दूर करने के लिए, १६ नवम्बर' ५६ को भारत ने चीन से प्रस्ताव किया कि चीनी सैनिक उस स्थान तक लौट जायँ जहाँ तक भारतीय सीमा भारत के नक्शों में दिखाई गई है तथा लद्दाख क्षेत्र में भारतीय सैनिक उस स्थान तक हट जायँ जिसे चीन अपनी सीमा रेखा मानता है। १७ दिसम्बर को चीन ने भारत का उक्त प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

अक्षय चिन के दक्षिण और पश्चिम, चीन और बढ़ आया। उसने इस क्षेत्र में और भी सड़कें बना लीं।

श्री नेहरू ने, ५ फरवरी १९६० को, चाओ एन-लाई को नयी दिल्ली आने के लिए आमन्त्रण भेजा ताकि ऐसे आधार ढूढ़ने का प्रयास हो जिससे शान्तिपूर्ण समझौता हो सके।

१६ अप्रैल' ६० को चाओ एन-लाई नयी दिल्ली आये। ६ दिनों तक नेहरू—चाओ वार्त्ता के पश्चात् घोषित किया गया कि दोनों देशों के अधिकारियों की वार्त्ता का कार्यक्रम स्थिर किया गया है, जो सभी सम्बद्ध दस्तावेजों को देखकर रिपोर्ट देंगे। इस बीच प्रयत्न रहे कि सीमा क्षेत्रों में मुठभेड़ न हो। २५ अप्रैल को चाओ एन-लाई ने प्रेस कानफरेन्स में मैकमहान रेखा नहीं पार करने की घोषणा की।

—नेफा क्षेत्र के कामेंग सीमान्त सबडिवीजन के तक्सांग गोम्पा में, ३ जून' ६० को बहुत बड़ी संख्या में चीनी सैनिकों ने प्रवेश किया। वे सीमा से ५ मील, भारतीय प्रदेश में घुस आये। भारत ने २२ अगस्त को चीन को विरोध पत्र भेजा जिसमें तिब्बत से उड़े चीनी विमानों के ५२ बार भारतीय सीमा का अतिक्रमण करने का उल्लेख था। २२ सितम्बर को सशस्त्र चीनी गश्ती दस्ते सिक्किम के निकट जलेपला दर्रा पार कर, भारतीय क्षेत्रों में घुस आये और १३ अक्टूबर को लद्दाख के हाट स्प्रिंग में सशस्त्र एक चीनी दल पहुँचा।

सीमा प्रश्न पर दोनों देशों के अधिकारियों की रिपोर्ट भारत सरकार ने १४ फरवरी १६६१ को, प्रकाशित कर दी। रिपोर्ट में कई प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट किया गया कि भारत द्वारा बताया गया सीमान्त ही परम्परागत एवं निर्धारित है और चीन का लगभग ५० हजार वर्गमील का भारतीय क्षेत्र पर दावा गलत है। इससे लगभग १२ हजार वर्गमील क्षेत्र पर चीन का अवैध अधिकार प्रमाणित होता था। चीन ने चुप्पी साध ली।....लम्बी अवधि के बाद १६६२ में तोड़-मरोड़ कर, उसने चीनी रिपोर्ट का विवरण प्रकाशित किया।

—चीनी सैनिक फिर भारतीय क्षेत्र में घुसे: जलेपला दर्रा से सिक्किम और लद्दाख के 'चुसूल' के निकट, अप्रैल–मई में।

१३ जुलाई' ६१ को मंगोलिया से दिल्ली लौटते हुए, रतन कुमार नेहरू ने पेकिङ्ग में चीनी अधिकारियों से भेंट की।

—चीनी सैनिक 'नेफा' में भारतीय सीमा का अतिक्रमण कर, और आगे कार्मेंग डिवीजन के चेमोकरपोला तक बढ़ आये तथा लद्दाख में भी अतिक्रमणकारियों ने तीन नयी चौकियाँ स्थापित कर लीं। चौकियों का सम्बन्ध पिछले अड्डे से जोड़ने के लिए, सड़कें भी बनाई गईं। १२ सितम्बर को जलेपला दर्रे से होकर, चीनी सैनिक फिर सिक्किम में घुसे।

—जनवरी १९६२ में चीनी सैनिक और असैनिक अधिकारियों ने 'लागजू' के पास सीमा का अतिक्रमण किया और रोई गाँव की ओर अग्रसर हुए।

—सम्बन्धों से अपना सकल जहान है
लेकिन सबसे प्यारा हिन्दुस्तान है
रक्त-पिपासु आँखें इस पर लगी हुई,
रोम-रोम में खूनी चाहें जगी हुई!
बर्बर-युग में लेते अब भी साँस ये,
रचते रोज फरेब-भरा इतिहास ये!
इनका हर पग इसका प्रबल प्रमाण है,
मानवता का होता नित अपमान है!
हमको सबसे प्यारा हिन्दुस्तान है!

—बालकृष्ण उपाध्याय

—३० अप्रैल ६२ को चीन सरकार द्वारा घोषणा की गई कि उसने काराकोरम दर्रे से लेकर, कागका दर्रे तक सम्पूर्ण सीमाक्षेत्र में गश्त करने के लिए, अपने सैनिकों को आदेश दे रखा है। मई में उनलोगों ने लद्दाख के 'स्पागुर' से दस मील दक्षिण-पूर्व भारतीय क्षेत्र में कई नई चौकियाँ बना लीं।

—पाकिस्तान ने चीन की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। ३ मई' ६२ को पाकिस्तान और चीन की ओर से घोषित किया गया कि दोनों देशों ने काराकोरम दर्रे के पश्चिम पाकिस्तान-चीन सीमा का रेखांकन करने का निश्चय किया है। यह स्थान तो भारतीय क्षेत्र है जिस पर पाकिस्तान अवैध रूप से आसन जमाये बैठा है। भारत सरकार ने १० मई को घोषित किया कि कश्मीर की सीमा के सम्बन्ध में कहीं किसी क्षेत्र में, पाकिस्तान और चीन के बीच यदि कोई सन्धि होगी तो वह विधानतः मान्य न होगी। और

—भारत सरकार ने १४ मई को अपना यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि पश्चिमी क्षेत्र में भारतीय सेना उस क्षेत्र के इधर चली आये जिसे चीन अपना बताता है और चीनीसेना मेकमहान रेखा के उस पार चली जाय जिसे भारत दोनों देशों के बीच परम्परागत सीमा मानता है तब १० जुलाई को चीनी सैनिकों ने गलवान नदी के पास की भारतीय चौकी को घेर लिया।

—चीनियों ने १४ अगस्त को पांगोंग झील के क्षेत्र में एक भारतीय चौकी पर गोले बरसाये तथा २६ अगस्त को दौलत बेग ओल्दी से ३२ मील दक्षिण-पूर्व एक भारतीय गश्ती दस्ते को घेर लेने का कुप्रयत्न किया।

जब चीनी किसी को भाई बनाते हैं

—दस्ते गासिब कभी बेबाक न होने दूँगा,
दामने-अरजे वतन चाक न होने दूँगा,
मादरे हिन्द, तेरी अजमतो असमत की कसम,
तेरा आँचल कभी नापाक न होने दूँगा।

●

अपनी तौहीन तो हम यक्षा भी देते लेकिन,
तुमने तौहीने वफा की है, तुम्हें याद रहे,
हम अहिंसा के पुजारी हैं, मगर यह कह दो,
तुमने भाई से दगा की है, तुम्हें याद रहे।
—इस्माफ़ मदोय

किस प्रकार दूसरे देशों को भाईचारे के छल में डालकर चीनी शासक नृशंस विश्वासघात कर सकते हैं इसका एक उदाहरण था सिंकियांग प्रान्त का चीनी शासक यांग स्सेन-सिंग। यह मचू शासकों के समय में सिंकियांग का गवर्नर था। १६११ में जब मंचू शासन का पतन हुआ तब मंगोलिया और तिब्बत ने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी और सिंकियाग में विद्रोह की चिनगारी सुलगने लगी। यांग पहले घबड़ाया फिर उसने उपाय सोच निकाला।

उसके गुप्तचर का नाम था तिंग। पहले उसने तिंग के द्वारा उन सब सिंकियागी नेताओं के नाम पता लगा लिये, जो सिंकियांग में राष्ट्रीय सरकार कायम करना चाहते थे। फिर उसने उन नेताओं के नाम पत्र भेजा कि वे एक निश्चित तिथि पर यांग के महल में आ जायें। याग खुद उन्हें सारी सत्ता सौंप देगा।

राष्ट्रीय नेताओं को विश्वास न हुआ। उन्होंने कहलाया कि वे याग के महलों में न जायेंगे, खुद यांग उनके खेमे में आये। याग नियत समय पर उनके खेमे में आया। सिंकियांगी लोगों ने एक बड़े प्रीतिभोज का आयोजन किया था। सैकड़ों सिंकियागियों के बीच यांग अकेला था, केवल उसका अनुचर तिंग उसके साथ था।

भोज शुरू होने के पहले याग ने शराब का प्याला एक हाथ में उठाया और दूसरे हाथ से तिंग की गर्दन थामी और बोला—"यह तिंग एक दुष्ट देशद्रोही है। यह बराबर मुझे बताता रहा कि आपलोग देशभक्त नहीं हैं। आप अपने देश की आजादी के

लिए नहीं संघर्ष कर रहे वरन् आप मेरी संपत्ति लूटना चाहते हैं। यह आज भी मुझे बता रहा था कि आप इस प्रीतिभोज में मुझे जहर देकर मार डालेंगे अतः मैं न जाऊँ। लेकिन मुझे आपलोगों पर पूरा विश्वास है। मैंने आज से आपको भाई मान लिया। मेरे पास सिर्फ एक रिवाल्वर है और वह मैं निकाल कर फेंके दे रहा हूँ।"

यांग ने रिवाल्वर निकाला और बोला—"मगर इसे फेंकने के पहले मैं इस देशद्रोही कुत्ते को मजा चखाता हूँ।" और तिंग भागे इसके पहले यांग की गोली उसके सीने के आरपार हो गई। फिर उसने रिवाल्वर फेंक दिया। चारों ओर उसकी जयजयकार होने लगी और भोले सिकियांगी तिंग को असली अपराधी मान कर उस पर थूकने लगे। अन्त में तय हुआ कि तिहवा में, यांग के महल में, कज्जाक, खिरगीज, मंगोल, ताजिक, उजबेक सभी जातियों के नेता मिलकर आजादी के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे।........

....उस दिन यांग ने बहुत बड़े भोज का इन्तजाम किया। ज्यों ही दस्तरख्वान पर थाल लग गये और सब ने पहला कौर उठाया कि यांग सहसा चीख उठा—"ठहरो! ठहरो!! यह सुअर का गोश्त किसने परोस दिया हमारे मुसलमान मेहमानों को कौन बेधरम करना चाहता है!" वह पता लगाने के लिए अन्दर गया। अन्दर से उसकी डांट-फटकार की आवाज आ रही थी। इतने में एक सन्तरी खंजर लटकाये आया और मंगोल नेता के पीछे खड़ा हो गया। यांग लौटा और बोला—"यह काफिर मंगोल बौद्ध है। यही मुसलमानों को बेधरम करना चाहता था; मेरे मेहमानों को।.... उतार लो इसका सर!" सन्तरी का खंजर उठा और मंगोल का ... फर्श पर तड़पता नजर आया।

ंग ने बाकी मेहमानों से माफी मांगी और दूसरे थाल लगवा

कर, खाना शुरू करने की प्रार्थना की। मगर खाना खत्म होते होते दो और मेहमान कत्ल कर डाले गये और एक की मुश्कें बंधवा दी दी गयीं। सिकियांग की आजादी का स्वप्न हवा गया। उसके बाद १७ साल तक यांग निष्कण्टक राज्य करता रहा। सन् २८ में एक दूसरे चीनी षड़यन्त्रकारी ने उसका वध किया और वह उसकी जगह राज्य करने लगा।

चीनी जब भाई-भाई का नारा लगाते हैं तो उसके पीछे क्या होता है यह तो इस घटना से मालूम ही होता है पर जो चीन भक्त कम्युनिष्ट चीनियों की गुलचरी करते हैं, उन्हें भी इस कथा से यह तो मालूम हो ही जायेगा कि याग ने सबसे पहले तिग को ही समुचित पुरस्कार दिया था। —चक्रधर

(पहरेदार हिमालय हमे पुकारता

—इस युग में फिर जन्मा रावण
जिसने भारत की लज्जा पर,
फिर अपना हाथ पसारा है
जिसने इस शान्त-प्राण भू पे,
पौरुष को फिर ललकारा है!
जिसने हत्या कर डाली है,
सारे नैतिक आचरणों की,
औ, पंचशील पर आधारित,
मानवता के उपकरणों की!

—शिवकुमार श्रीवास्तव

शांति, मित्रता और पचशील की आड में, चीन चुपके-चुपके युद्ध की तैयारियाँ करता रहा। २० अक्टूबर, ६२ को युद्धोन्माद से प्रेरित

तो उसने अपने चेहरे से नकाब उतार फेंका। पूरी तैयारी के साथ उसने भारत पर आक्रमण कर दिया। नेफा और लद्दाख में एक साथ घमासान लड़ाई छिड़ गई। एक-एक इंच जमीन के लिए भारतीय सैनिकों ने अपूर्व वीरता दिखलायी। आक्रमणकारी अधिक संख्या में थे, फिर भी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए लड़ते हुए भारतीय हस्याती जवानों ने उनके दाँत खट्टे कर दिये।

विमानों के अतिरिक्त, स्वचालित रायफलों, भारी मोर्टारों और मशीन गन आदि आधुनिक शस्त्रास्त्रों से आक्रमण करने पर भी चीनी भारी संख्या में मारे गये।

उन्होंने उत्तर सीमांचल के केमांग, सियांग, सुवनसिरी और लोहित में एक साथ कई स्थानों से आक्रमण किये। उनका इरादा ब्रह्मपुत्र नदी के तट तक, तेजपुर पहुँचकर, आसाम के तेल एवं कोयला क्षेत्रों तथा चाय बगानों को लेकर कलकत्ता की ओर बढ़ने का था।

भारतीय जवान चट्टान की तरह अड़े रहे और चीनी सैनिकों की लहर पर लहर उनसे टकराती रही।

—भारत का हर बेटा भैरव, बलि का है मतवाला,
वह देगा फिर मातृभूमि को शत्रु-मुण्ड की माला।
ये गोरखा, जाट हैं देखो, गुर्जर और बघेले,
इन सब ने हैं महामृत्यु के खेल सदा से खेले।
ये हैं सिख, ये वीर मराठे, ये रजपूत रुहेले,
इन के घर हर दिन होते हैं, बलिदानों के मेले।

—उमाकांत मालवीय

एक के बाद एक चीनी सैनिकों का दल समुद्र की लहर की तरह आने लगा। भारतीय जवान अपने मोर्चे पर डटे रहे। शत्रुओं

की लाश पर लाश गिरने लगी। २१ अक्टूबर की रात में बहुत बर्फ गिरी। फिर भी वे लगातार शत्रुओं का मुकाबला करते रहे। २२ अक्टूबर तक ढोला, सांगघर, खिजमेन और किबुतू नामक चौकियाँ दुश्मन के अधिकार में चली गई।

भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने चीनी आक्रमण का मुकाबला करने लिए संयुक्त मोर्चा बनाने की अपील की:—"इस लड़ाई में जिसको लड़ने के लिए हम बाध्य किये गये हैं, मैं संगठित होकर भाग लेने के लिए आप सभी देशवासियों को—चाहे आप किसी जाति, पार्टी या समुदाय के क्यों न हों, आमन्त्रित करता हूँ। अपने देशवासियों, अपने उद्देश्य तथा देश के भविष्य के प्रति मुझे पूर्ण आस्था है, किन्तु भविष्य हमारी अग्नि-परीक्षा करना चाहता है और हमसे बलिदान माँगता है। ..."

—देश के सपूत देश के जवान,
इम्तहान है तुम्हारा, इम्तहान।

आज जन्मभूमि पर विपत पड़ी,
लालची निगाह शत्रु की गड़ी
राष्ट्र के लिए बड़ी कठिन घड़ी,
प्रश्न की लकीर-सी खिंची खड़ी
दाँव पर चढ़ा हुआ है आन-मान। ...

ऐ वतन की आबरू के नूर तुम,
चल पड़ो निडर समर में शूर तुम
देश-प्रेम के नशे में चूर तुम,
दुश्मनों का तोड़ दो गरूर तुम
नाप दो जमीन और आसमान। ...

तो उसने अपने चेहरे से नकाब उतार फेंका । पूरी तैयारी के साथ उसने भारत पर आक्रमण कर दिया । नेफा और लद्दाख में एक साथ घमासान लड़ाई छिड़ गई । एक-एक इंच जमीन के लिए भारतीय सैनिकों ने अपूर्व वीरता दिखलायी । आक्रमणकारी अधिक संख्या में थे, फिर भी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए लड़ते हुए भारतीय इस्पाती जवानों ने उनके दाँत खट्टे कर दिये ।

विमानों के अतिरिक्त, स्वचालित रायफलों, भारी मोर्टारों और मशीन गन आदि आधुनिक शस्त्रास्त्रों से आक्रमण करने पर भी चीनी भारी संख्या में मारे गये ।

उन्होंने उत्तर सीमांचल के केमांग, सियांग, सुवनसिरी और लोहित में एक साथ कई स्थानों से आक्रमण किये । उनका इरादा ब्रह्मपुत्र नदी के तट तक, तेजपुर पहुँचकर, आसाम के तेल एवं कोयला क्षेत्रों तथा चाय बगानों को लेकर कलकत्ता की ओर बढ़ने का था ।

भारतीय जवान चट्टान की तरह अड़े रहे और चीनी सैनिकों की लहर पर लहर उनसे टकराती रही ।

कई मोर्चे पर गोलियाँ चुक जाने के बाद भी भारत के वीर सैनिक किरिच लेकर दुश्मन पर टूट पडे, कई जगह उन्होंने बन्दूक के कुन्दों से दुश्मनों को मौत के घाट उतारा तथा अन्तिम सांस तक अपने मोर्चे पर डटे रहे।

—निसार हो न वतन पर तो आबरू क्या है!
लगा दे आग न दिल में तो आरजू क्या है!
न जोश खाये जो गैरत से वह लहू क्या है!
फ़िदा वतन पै जो हो, आदमी दिलेर है वह,
जो यह नहीं तो फ़क़त हड्डियों का ढेर है वह!

—'चकबस्त'

—"हमसे ज्यादा ताकतवर देशों को, हमसे ज्यादा संगठित देशों को, लड़ाई के लिए हमसे ज्यादा तैयार देशों को, अचानक होने वाले हमले के सामने झुकना पड़ा है या शुरू शुरू में पीछे हटना पड़ा है। हिलटर की फौज़ों के सामने ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, हालैंड और कई दूसरे देशों का यही हाल हुआ था। शुरू-शुरू में उन्हें पीछे, हटना पड़ा था। एक या कई छोटी-छोटी लड़ाइयाँ युद्ध नहीं होतीं और न इन छोटी छोटी लड़ाइयों के फैसले से युद्ध का फैसला हो जाता है।"

—वी० के० कृष्ण मेनन

—२६ अक्टूबर को राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने देश में संकट स्थिति की घोषणा की। २७ अक्टूबर को चीनी सैनिकों ने लद्दाख में दमचोक की भारतीय चौकी पर आक्रमण किया। 'चागला' और 'जराला' चीनियों के अधिकार में चले गये।

१ नवम्बर को प्रधान मंत्री नेहरू जी ने प्रतिरक्षा विभाग स्वयं संभाल लिया। कृष्ण मेनन मंत्रिमंडलीय स्तर के प्रतिरक्षा उत्पादन

मंत्री बनाये गये। कर्नल 'नसीर' ने अविलम्ब युद्ध बन्द करने, दोनों पक्षों को लड़ाई प्रारम्भ होने के पूर्व के स्थानों पर लौट जाने तथा दोनों सेनाओं के बीच एक खाली (बफर) क्षेत्र रखने और संकट के के अन्त लिए समझौता वार्त्ता चलाने का प्रस्ताव रक्खा था, जिसे चीन ने अस्वीकार कर दिया।

प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में, ३ नवम्बर को, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा कोष समिति' की स्थापना हुई। ५ नवम्बर को प्रतिरक्षात्मक मोर्चाबन्दी का ध्यान रखते हुए, भारतीय सेना 'दौलत बेग ओल्दी' की चौकी से हट गई। ७ नवम्बर को प्रधान मंत्री ने कृष्ण मेनन का इस्तीफा स्वीकार कर लिया। 'राष्ट्रीय विकास परिषद' की घोषणा प्रकाशित हुई—"राष्ट्र की विकास योजनाएँ राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के अनिवार्य अग हैं। ....हम अपनी प्रतिष्ठा और स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं। अपने संविधान में हमने जो जनतांत्रिक पद्धति स्वीकार की है, उसकी रक्षा हो—इसलिए लड़ रहे हैं। हम न्याय के लिए लड़ रहे हैं और इस लिए अपनी मातृभूमि की रक्षा के हेतु हम अपने को समर्पित करते हैं।

—रक्षा हमको करनी है माँ बहनों के सिन्दूर की
हर हिन्दू की रोटी की, हर मुस्लिम के तन्दूर की
मंदिर अपना, मस्जिद अपनी, अपना हर गुरुद्वारा है
और हिमालय तो हमको प्राणों से ज्यादा प्यारा है

× × ×

आजादी कायम रहती है मेहनत से औ' काम से
और चली जाती है घर से वह गफलत आराम से
खून पसीने में बदले वह उसका पहरेदार है
कामचोर जो हैं वह उसकी नजरों में गद्दार है

गद्दारों को दफना दो, जयचंदी नस्ल मिटा दो
घर-घर रण-विगुल बजा दो, कोई न सोता रह जाये....
जवानों बढ़ो आगे बढ़ो ! जय हो हिन्दोस्तान की
जय हर वीर जवान की
—'नीरज'

—१४ नवम्बर को प्रतिरक्षामंत्री के पद पर श्री यशवत राव बलवन्त राव चव्हाण की नियुक्ति की अधिकारिक रूप से घोषणा की गई।

—आदमीयत से प्यार के नाते,
छोड़ते शांति के कबूतर हम
मानते जब किसी को दिल से हैं
उस पे सब कुछ निसार देते हैं,

वैरियो ! कान खोल कर सुन लो तुम,
आन पर जान देने वाले हम
दोस्ती में हैं सर अगर देते
दुश्मनी में उतार लेते हैं

पिता की आन, प्रिया की निगाह, माँ की साध
बहन की राखी की कीमत चुका के दम लेंगे,
उठे हैं हौसले हम सब के आसमां की तरह
पड़े पहाड़ भी पथ में झुका के दम लेंगे।
—रामसेवक श्रीवास्तव

६ अँगड़ाई ले रहा है हिन्दोस्तां हमारा

चीनी आक्रमण के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय चेतना प्रकट हुई। नेफा और लद्दाख के मध्य प्रान्तीयता और जातीयता का भेदभाव

मिट गया। राष्ट्रीय एकता की प्रेरणा से भारतवासी अखंड, सशक्त और समृद्ध राष्ट्र का संकल्प करने लगे। एकता और जागरण का जैसा रूप दिखाई पड़ा, वैसा पहले कभी नहीं था।

बेशर्म चीनी आक्रमणकारियों के प्रति देश के कोने-कोने में रोष की लहर फैल गई। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर धन-जन समर्पण का संकल्प हुआ।

—तन दो, जिससे सेना की दृढ़ दीवार बने,
धन दो, जिससे सीमा पर तोपें छा जाएँ;
मन दो, जिससे अपने पंजे घूँसा बनकर—
दुश्मन के जबड़े तोड़ चल दाएँ-बाएँ!

—अपने ही सैनिक वीर जवानों की खातिर
तुम वस्तुदान दो, रक्तदान दो, दाताओ!
अपनी ही रक्षा को यह दान तुम्हारा है,
सर्वस्व दान दो, पूर्ण शक्ति से भ्राताओ!

—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

—देश के कोने-कोने में एकता का स्वर गूँज उठा तो लेखक भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि आक्रमणकारियों से देश की मुक्ति होने तक वे मुक्ति-संग्राम में लगे रहेंगे।

—वक्त पड़ने पे हर एक वार उठा लेते हैं
गुल के शैदा हैं, मगर खार उठा लेते हैं
हम वो शायर हैं, कि जब ज़ुल्म का सर उठता है
हम कलम फेंक के तलवार उठा लेते हैं

फर्ज की बढ़ती हुई प्यास बुझा लूँ, तो चलूँ,
खून में चीन के जी भर के नहा लूँ, तो चलूँ।

ऐ अजल, खून वतन मांग रहा है मुझ से,
मुझ पे एक फर्ज है इसको भी चुका लूँ, तो चलूँ।
—इसहाक अदीब

—भारत सत्य-सदन है जग का, शांति-कपोतों का तीरथ है;
ज्ञान-सूर्य औ' कमल-कल्पना, जिसकी जय संस्कृति के रथ हैं!
तुमने तुलसी औ' रवीन्द्र के, गीत-भवन पर वार किया है....

—नैतिकता की परवशता है, उसको शस्त्र उठाना होगा,
काल-सत्य को बन प्रलयंकर, रिपु का चिह्न मिटाना होगा!
ओ मेरी लेखनी, धड़कनें मेरी हर जन में उतार दे!
तेरे वज्र-गीत की टंकारें दुश्मन का मद उतार दें!
—सुयोगी

—सब से बढ़कर शक्ति समय की, आज तुम्हारे पास है
तुम्हें खून से अपने लिखना, आज नया इतिहास है
लेखनियों को अस्त्र बना लो, है यह समय प्रहार का
उठो साथियो समय नहीं है, यह शोभा शृंगार का,
आज चुकाना है, ऋण तुमको, भारत माँ के प्यार का।
—'सेवक'

—जब शत्रु सीमा पर खड़ा ललकारता हो,
उस समय अवकाश की, आराम की,
बात सुनना या सुनाना पाप है।
शत्रु को घर से भगाने के लिए,
देश की इज्जत बचाने के लिए;
स्वर्ण की जय हो जरूरत देश को.
और भी हथियार लाने के लिए—

मृत्तिका की देह-सज्जा के लिए,
उस समय सोना बचाना पाप है!
—अर्चना का थाल लेकर हाथ में,
वीर-वधुएँ एक मंगल-प्रात में—
दे रही हों प्राण-पतियों को विदा:
विजय की शुभ-कामना के साथ में!
उस समय यदि दे दुहाई प्यार की,
रोक ले, उस प्यार को धिक्कार है।

—'अजय'

—आसाम साहित्य सभा ने भी चीनी अजगर की युद्ध लिप्सा और साम्राज्य-लिप्सा के विरुद्ध खुला एलान किया। हम लेखक गण इस युद्ध को केवल राजनीतिक सीमा-विवाद न मानकर तीन दिशाओं में बहुत बड़े युद्धों का प्रतीक मानते हैं। जंगखोरों के खिलाफ मानव जाति आज शांति के लिए जो संघर्ष कर रही है, हमारी लड़ाई उसी संघर्ष का एक पवित्र अंश है। अधर्म के विरुद्ध धर्म का, अनीति के विरुद्ध नीति का और पाप के विरुद्ध पुण्य का, जो युद्ध सदा से चला आ रहा है, यह उसका भी प्रतीक है। अंत में हम यह भी मानते हैं कि हमारे भारत की एक जीवन-पद्धति है, जो मनुष्य को सब ओर से विकसित और पूर्ण बनाती है। कम्युनिज्म की एकांगी और तानाशाही पद्धति के विरुद्ध यह भारतीय जीवन पद्धति की जय यात्रा है। इस लिए यह हमारे समस्त जीवन और अस्तित्व का प्रश्न बन गया है।

हमारे रेडियो से आज देशभक्ति के गीत गूँज रहे हैं। गाँवों और नगरों में सांस्कृतिक जत्थे राष्ट्रीय गीत गाते हुये गाँव-गाँव नगर-नगर घूम रहे हैं। हम लेखकों और कलाकारों के लिए यह सर्वथा नये प्रकार का अनुभव है। उनकी कलमें आज तलवार की

तरह पैनी बन गयी हैं। जिस दिन हमारे आसामी लेखकों को यह मालूम हुआ कि कुछ हिन्दी कवि और लेखक सुदूर प्रदेशों से अपने खर्चे पर आये हैं और कंधे से कंधा मिला कर गाँवों और नगरों में इस जागरण के अभियान में हाथ जुट गये हैं, उस दिन हमारी छाती दुगुनी चौड़ी हो गयी। हम सब भारतीय लेखकों ने मिलकर, एक अपील समस्त संसार के लेखकों और बुद्धिजीवियों को भेजी। 'हम सत्य के लिए लड़ रहे हैं, जो भारतीय जीवन पद्धति का मेरुदंड है।'

—वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

—हमलावर, खबरदार! खबरदार!!
अपना देश बचाने को हिन्दुस्तानी हैं तैयार....
इस धरती का चप्पा-चप्पा वापस ले के रहेंगे
जान भी देनी पड़े अगर तो आज खुशी से देंगे
यह आवाज है भारत की, यह नेहरू की ललकार
हमलावर, खबरदार!

आज न हम पंजाबी, ना बंगाली, ना मद्रासी
एक जान हैं, एक कदम हैं सारे भारतवासी
यह मस्जिद का नारा है, यह मंदिर की ललकार
हमलावर, खबरदार!

जो काला बाजार चलाये, वह है देश का दुश्मन
जो आपस की फूट बढ़ाये, वह है देश का दुश्मन
जो ना काम देश के आये, आज वह है गद्दार
हमलावर, खबरदार!

—'प्रेम धवन'

० मुल्क का मुल्क एक लश्कर है

—देश की रक्षा में फ़िल्मवाले भी किसी से पीछे नहीं हैं। बम्बई के फिल्मवालों की एक सभा राजकपूर स्टूडियो में हुई और सभा में राष्ट्रीय रक्षा में सात लाख रुपये जमा हो गये। दिलीपकुमार, राजकपूर, मीनाकुमारी, शंकर जयकिशन ने पचास-पचास हजार रुपये और वैजयन्तीमाला, वहीदा रहमान, शम्मीकपूर, राजेन्द्र ने पचीस-पचीस हजार रुपये तथा देवानंद, गुरुदत्त ने बीस-बीस हजार रुपये; नंदा, साधना, आशा ने दस-दस हजार रुपये और लेखक राजेन्द्रकृष्ण ने पाँच हजार रुपये फंड में जमा किये।

एक गरीब लेखक ने अपनी पार्कर कलम बेंच कर, उसका पैसा रक्षा-कोष में दे दिया। 'अम्मू' नाम के एक लाइट मैन ने अपनी दिन भर की मजदूरी दी और यह वादा किया कि संकट के दौरान वह अपने 'ओवर टाइम' का पैसा फंड में देता रहेगा। इसके अतिरिक्त भी और रुपये मिले।

—हम वो शायर, वो मुगन्नी, वो कलाकार नहीं,
जंग का नाम जो सुनते हैं तो घबराते हैं।
ऐ दग़ाबाज ! ऐ मक्कार! हम वो हस्ती हैं,
बन के तूफान जो हर जुल्म से टकराते हैं।
हम वो बादल हैं, गरज कर जो वतन को अपने,
तुझसे लड़ने के लिए, ख्वाब से चौंकायेंगे।
और जिस राह पे छायेगा उदासी का तिमिर,
बिजलियाँ बन के उसी राह को चमकायेंगे
धड़कनें जो कि कुछ खामोश-सी है सीनों में,
कौमी जज्बे की लहर, उनमें यों उठायेंगे

जो उठेगी तो पखारेगी हिमालय के चरण,
तेरे सपनों के महल, खाक में मिल जायेंगे।
—श्याम कृष्ण

—फ़िल्मी कलाकारों, अभिनेत्रियों ने गली-गली घूम कर राष्ट्रीय रक्षा-कोष के लिए धन एकत्र किया। लोकप्रिय सिनेतारिका एवं शास्त्रीय नृत्यों में पारगत वैजयन्तीमाला ने सीमा पर लड़ने वाले भारतीय जवानों के मनोरंजन के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की।

फिल्मी कलाकार
राष्ट्रीय रक्षा-कोष के लिए धन एकत्र करते हुए

राष्ट्र निर्माण और विद्यार्थी

—जननी स्वर्गादपि गरीयसी
जन्मभूमि कल्याणी जय हे
षट ऋतुओं से गात अलंकृत
भाल हिमाल मुकुट रवि शोभित

हरितांचल धनधान्य भरा
चरणों पर दस दिकपाल निवेदित
गौरव गाथा काल सुनाए सिद्धि रजत शशि चँवर डुलाए
जग वन्दित जन-जन अभिनन्दित मातृभूमि वरदानी जय हे
जय हे जय हे जय जय जय हे

—गिरिधर गोपाल

राष्ट्रनिर्माण और विद्यार्थी का वही सम्बन्ध है जो माता और पुत्र का होता है। अतः विद्यार्थी में राष्ट्र के प्रति देशभक्ति की भावना होनी चाहिए। देशभक्ति पवित्र भागीरथी के समान है जिसमें स्नान करने से शरीर ही नहीं, मन भी पवित्र हो जाता है। मानव के अतिरिक्त, पशु-पक्षी तथा पौधे तक सभी अपनी जन्मभूमि से प्रेम करते हैं।

शीतप्रधान देश के पशु-पक्षी जब उष्ण देशों में लाये जाते हैं तो वे अपने प्राण त्याग देते हैं, क्योंकि अपने देश के साथ उनका कुछ ऐसा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि वे अपने देश की जलवायु से भी प्रेम करने लगते हैं। इसी प्रकार स्वदेश-प्रेम की रक्षा और उसकी उन्नति के लिए विद्यार्थियों को अपना तन, मन, धन तीनों देश के चरणों में समर्पित कर देना आवश्यक है। जन्मभूमि के प्रति निष्ठा रखना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। जिस भूमि में हम पल कर बड़े हुए हैं, जिसने हमें रहने के लिए अपने अतुल अंक में आवास दिया, उसकी सेवा से विमुख होना कृतघ्नता है।

वास्तव में माता और मातृभूमि के ऋण से मनुष्य मृत्यु पर्यन्त मुक्तनहीं होता। मातृभूमि की मानरक्षा के लिए अपने को बलिदान करने में जो आनन्द आता है, देशहित की रक्षा में अपना स्वार्थ

बलिदान करने में जो सुख तथा शांति प्राप्त होती है, उसे कोई सच्चा देशभक्त ही जान सकता है।

एक बार जापानियों की एक छोटी सी टुकड़ी घूमती-फिरती रूसी-सीमा में प्रवेश कर गई। युद्ध का समय था। अतएव उसे पकड़ कर सेना के एक कमाण्डर के सामने लाया गया। कमाण्डर ने उनकी भूल जानकर इस शर्त पर उन्हें छोड़ने का वचन दिया कि वे अपना राष्ट्रीय ध्वज उसके चरणों तक झुका देंगे।

जापानियों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। कमान्डर ने तलवार खींच ली। टुकड़ी का प्रत्येक व्यक्ति कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर भी झण्डा नीचे नहीं झुका। स्वदेश-प्रेम का यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

क्रीमियों का युद्ध चल रहा था। एक ओर रूसी तथा कज़ाक थे, दूसरी ओर केवल छः सौ अंग्रेज सैनिक। तोपें गरज रही थीं। उस घाटी की ओर एक कदम भी बढ़ना मृत्यु को आमन्त्रित करना था। पर क्या कोई व्यक्ति पीछे हटा ? नहीं।

सेनापति की एक आज्ञा पर वे चील की तरह अपने शिकार पर टूट पड़े। एक के बाद एक मृत्यु की गोद में सोते गये। उनके उत्साह में कोई कमी न आई।

वे बढ़ते गए, बढ़ते गए और उन्हीं तोपों के मुँह को फेरने में सफलीभूत हुए। शत्रु की सेना भाग खड़ी हुई और गौरव की एक अमर गाथा अंग्रेज कवि टेनिसन के मुख से निकल पड़ी—

वीरों के मान की,
रणधीरों के गुमान की,
उठती हुई शान की,
जो अमर गाथा है,

वह क्या कभी-
-जब तक संसार है—
समय के प्रहारों से
अतीत के गर्त में विलीन हो सकती है ?

जापान का एक बालक एकबार अत्यन्त गोपनीय पत्र लेकर कहीं जा रहा था। रास्ते में शत्रुओं के वायुयान ने उसे देख लिया और उसे पकड़ कर अपने कमाण्डर के पास ले जाने लगा।

मार्ग में समुद्र पड़ा। बालक यदि चाहता तो पत्र वायुयान के सैनिकों के हवाले कर अपने प्राण बचा सकता था, पर उसे अपने प्राणों की कब चिन्ता थी। वह तो देश के प्रति कर्त्तव्य पालन करना चाहता था। उसके देशवासी सैनिक कमाण्डर का यह आदेश था कि वह पत्र शत्रुओं के हाथ में किसी प्रकार भी न पड़ने पाए। अतएव वह समुद्र देख कर नाच उठा।

उसने एक छलांग लगाई और सागर में गहरी समाधि ले ली। इससे बढ़कर कर्त्तव्य परायण का दूसरा उदाहरण और क्या मिल सकता है!

अतः छात्रों को देश की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी है। देश सेवा और परोपकार ही उनका धर्म है। देशवासियों के सुख में ही उनका सुख तथा दुख में ही दुख है। उसकी अन्तरात्मा स्वार्थ रहित होनी चाहिए। छात्रों का राष्ट्र के प्रति यह महान् कर्त्तव्य है, उसको त्याग की उस भूमि पर जाना चाहिए, जहाँ वह कह उठे—

जग भूले, पर मुझे एक बस,
सेवा धर्म निभाना है।
जिसकी है यह देह उसी में
इसे मिला मिट जाना है।

देश की मान-मर्यादा की रक्षा करने का सभी पर समान उत्तरदायित्व है। विद्यार्थी कल के नागरिक हैं। उन्हें प्रारम्भ से ही अपने राष्ट्र तथा देश के प्रति कर्त्तव्य को जानना चाहिए। प्रारम्भ से ही उन्हें अपना दृष्टिकोण विस्तृत तथा कार्यक्षेत्र विशाल रखना चाहिए। क्योंकि उनका समस्त जीवन अपने ही स्वार्थों की पूर्त्ति के लिए नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र की सेवा के लिए भी होता है। विद्यार्थियों से राष्ट्र को बहुत-कुछ आशा भी रहती है।

विद्यार्थी राष्ट्र के अंग हैं। विद्यार्थियों के सहयोग से ही राष्ट्र का निर्माण और उसकी प्रगति होती है। किसी भी राष्ट्र का वास्तविक अर्थ देश की भूमि तथा क्षेत्रफल के विकास आदि से नहीं होता, बल्कि राष्ट्र की सभ्यता ही राष्ट्र का यथार्थ रूप है।

देश के सभी व्यक्ति अपने-अपने कार्य-व्यापारों से अपने व्यक्तिगत जीवन को उन्नत एवं समृद्धिशाली बनाने का प्रयास करते हैं। इस संसार में धन ही सब कुछ नहीं है। जिन लोगों के जीवन का उद्देश्य केवल धन बटोरना है, उनकी प्रतिष्ठा कम हुई है। अधिकांश अवस्थाओं में तो उन्हें किसी ने पूछा तक नहीं है।

मानव-समाज स्वार्थी अवश्य है पर अन्त में पूजे वे ही जाते है, जिन्होंने अपने जीवन को अर्पण करते समय सच्चे मनुष्य होने का परिचय दिया। अतः सभी प्रयत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में देशहित के लिए ही होते हैं। विद्यार्थियों का मुख्य ध्येय विद्यापार्जन करना है। जहाँ एक ओर विद्या उनके जीवनको समुन्नत और शान्त बनाती है, वहाँ दूसरी ओर देश को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है।

जिस प्रकार कोई धनोपार्जन करके देश की सेवा करता है, कोई समाज-सुधार द्वारा, कोई कला द्वारा, उसी प्रकार विद्यार्थी भी शिक्षा के द्वारा ज्ञानार्जन करके देश सेवा का पुन

निकट भविष्य में देश का भार इन्हीं विद्यार्थियों के कन्धों पर आएगा। ये देश के भावी कर्णधार हैं। आज के युग में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

वह युग समाप्त हो गया जब छात्र २५ वर्षों तक गुरुकुल में ही रहते थे। तब उन्हें न देश की राजनीति से सम्बन्ध था और न देश पर मँडराने वाले काले बादलों से। आज के युग में राष्ट्र को निःस्वार्थ देशसेवकों तथा भक्तों की आवश्यकता है। इसको विद्यार्थी ही पूरा कर सकते हैं।

विद्यार्थी के सामने न तो ऊँच-नीच का प्रश्न होता है, न छोटे-बड़े का और न गरीब-अमीर का। विद्यार्थियों की सामूहिक, संगठित शक्ति समय पड़ने पर किसी भी भयानक विपत्ति का सामना कर सकती है। विद्यार्थियों में विशुद्ध राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करके देश सेवा के पवित्र कार्य में उन्हें लगाया जा सकता है।

इस विषय पर विद्वानों में अनेक मत हैं। कुछ कहते हैं कि विद्यार्थी जीवन भावी जीवन का निर्माण-काल है। जिस प्रकार नींव निर्बल हो जाने पर भवन के गिर जाने का भय रहता है, उसीप्रकार, छात्रों को भी एकाग्रचित्त होकर पूर्ण परिश्रम से विद्याभ्यास ही करना चाहिए। राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने, सभा-सोसाइटियों में आने-जाने से चित्त की स्थिरता नष्ट हो जाती है।

पर दूसरों का कहना है कि भावी जीवन के विशाल कर्त्तव्य-क्षेत्र के लिए मनुष्य विद्यार्थी-जीवन में ही आवश्यक साधन एकत्र करता है। उसकी बुद्धि तथा विद्या की परीक्षा इसी में है कि वह दूसरों की सेवा, सहायता तथा उन्नत्ति के लिए अपने को किस सीमा तक तैयार कर ले। इन दोनों ही विवादों से यही निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थी का राष्ट्र से उतना ही सम्बन्ध है जितना देश के वर्गों का।

विश्व के सभी देशों के इतिहास का सिंहावलोकन करने से विदित होता है कि उनमें हुई क्रांतियों में विद्यार्थियों ने भी बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया है। भारतवर्ष के स्वतंत्रता-यज्ञ में भी हँसते-हँसते न जाने कितने विद्यार्थियों ने भी अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी।

सन् ४२ में जब देश के समस्त नेता जेल में बन्द कर दिये गये थे, विद्यार्थियों ने ही देश के स्वतंत्रता-संग्राम का नेतृत्व किया था तथा भारत के समस्त अंचलों में क्रांति की ज्वाला जलाने वाले विद्यार्थी ही थे। सुभाष, नेहरू, भगतसिंह, महात्मा गान्धी, चन्द्रशेखर आजाद आदि महापुरुष विद्यार्थी-जीवन में ही नेतृत्व-शक्ति प्राप्त कर चुके थे। न जाने कितनी माताओं के प्यारे पुत्रों ने अपने अध्ययन से विरत होकर स्वतन्त्रता संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे दी थी।

आज भारत स्वतंत्र है। विद्यार्थियों के लिए बहुत बड़ा कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है। विद्यार्थियों को किसान मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारनी चाहिए, अगहीन असहायों के भोजन तथा वस्त्र की व्यवस्था करनी चाहिए, पंचवर्षीय योजनाओं में पूर्ण सहयोग करना चाहिए, जिससे देश सभी प्रकार से भौतिक उन्नति कर सके। स्वदेश-रक्षा के लिए विद्यार्थियों को पूर्णरूप से कटिबद्ध होना चाहिए जिससे कोई भी शत्रु देश पर कुदृष्टि न डाल सके।

एक समय था जब कि देश की प्रत्येक प्रगति, चाहे वह धार्मिक हो या आर्थिक, सामाजिक हो अथवा वैदेशिक, राजनीति के अन्तगत आती थी। निःसन्देह विद्यार्थियों को देश की रक्षा के लिए तथा उसको सुदृढ़ बनाने के लिए राजनीति में भाग लेने का अधिकार है।

विद्यार्थियों का परम कर्त्तव्य विद्याध्ययन ही है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। उन्हें अपनी पूरी शक्ति ज्ञानार्जन में लगानी चाहिए।

आज भारत पूर्ण स्वतंत्र है। अपने देश में सर्वांगीण उन्नति के लिए, पूर्ण समृद्धि के लिए हमें अभी बहुत प्रयत्न करने हैं। देश को योग्य इञ्जीनियरों, योग्य चिकित्सकों, साहित्य-मर्मज्ञों, वैज्ञानिकों, योग्य, अनुभवी तथा कुशल व्यापारियों की बड़ी आवश्यकता है। इसकी पूर्ति विद्यार्थी ही करेंगे। —श्री राधेश्याम, एम० काम०

—हम स्वतंत्र हैं, हम भारत की धरती के रखवाले
दृढ़ प्रतिज्ञ हम टले नहीं हैं, कभी किसी के टाले
जयगानों से अलग नहीं थे, नहीं अलग होंगे हम
बलिदानों से अलग नहीं थे, नहीं अलग होंगे हम
निर्माणों से अलग नहीं थे, नहीं अलग होंगे हम
—प्रयाग शुक्ल
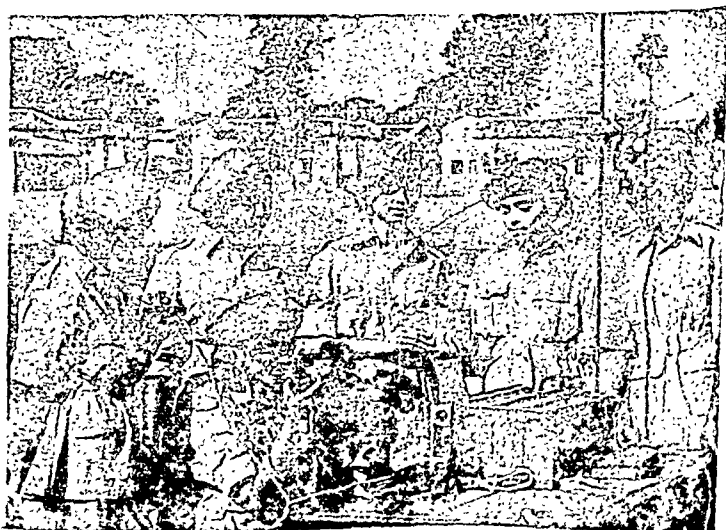
राष्ट्रीय सेवा में छात्राओं का भी योगदान

• राष्ट्रीय छात्र सेना

—हिमाद्रि तुङ्ग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
—जयशंकर प्रसाद

राष्ट्रीय छात्र सेना (एन० सी० सी०) की स्थापना सन् १६४८ में संसद के बनाये एक कानून के अन्तर्गत हुई थी। पिछले साल हमारी उत्तरी सीमा पर चीन के बर्बर आक्रमण और देश में संकट की स्थिति की घोषणा के बाद राष्ट्रीय छात्र सेना का विस्तार जरूरी हो गया।

बम्बई में फरवरी, १९६३ में देश के विश्वविद्यालयों के उप-कुलपतियों की बैठक हुई और उनके अनुरोध पर सभी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में 'राष्ट्रीय छात्र सेना' का अनिवार्य प्रशिक्षण शुरू करने का निश्चय किया गया।

आरम्भ में कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के डिग्री कक्षाओं तक के (अण्डर-ग्रेजुएट) सभी स्वस्थ लड़कों को अनिवार्य सैनिक शिक्षण दिया जायगा। बाद में इसमें हाई स्कूल के छात्रों को भी शामिल करने पर विचार किया जायगा। इस कार्यक्रम की मुख्य बात यह है कि यह नियमित पढ़ाई का अंग होगा, ताकि इससे छात्रों की पढ़ाई, खेलकूद और सांस्कृतिक गतिविधि में कोई बाधा न पड़े। हफ्ते में दो दिन दो-दो घण्टे पढ़ाई के समय में ही छात्रों को सैनिक शिक्षण दिया जायगा। इससे सैनिक शिक्षकों और सिखाने के हथियारों का पूरा पूरा उपयोग होगा।

संकट काल से पहले भी सेना में भरती होने वाले अफसरों में से ५० प्रतिशत राष्ट्रीय सेना से आते थे। आगे और अधिक छात्र सेना में अफसर हो सकेंगे। राष्ट्रीय सेना के इस विस्तार के

कारण प्रशिक्षकों की संख्या भी बढ़ानी पड़ेगी। इसलिए यह निश्चय किया गया है कि राष्ट्रीय छात्र सेना के जो पुराने कैडेट 'बी' और 'सी' सर्टिफिकेट ले चुके हैं, अच्छे वेतन और शर्तों पर पूरे समय के लिए प्रशिक्षक नियुक्त किया जाय। सीनियर कैडेटों से भी थोड़े समय के लिए सिखलाने का काम लिया जायगा।

कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के काफी अध्यापकों ने भी राष्ट्रीय छात्र सेना में प्रशिक्षक अफसर बनने के लिए नाम लिखाया है। पिछले महीनों में नागपुर के पास कम्पनी के अफसर ट्रेनिङ्ग स्कूल और पूना के पास पुरन्दर की एन० सी० सी० अकादमी में तीन हजार अफसरों को सिखाया गया है। आठ क्षेत्रीय शिविरों में प्रशिक्षण दिया गया है। छात्रों को सैनिक शिक्षा देने के लिए लगभग ८ हजार जे० सी० ओ० और एन० सी० ओ० प्रशिक्षकों की जरूरत है। इसके लिए भूतपूर्व सैनिकों और चुने हुए कैडेट स्नातकों को नियुक्त किया जा रहा है।

राष्ट्रीय छात्र सेना के अनिवार्य प्रशिक्षण से खास परिस्थितियों में ही लड़कों को छूट दी जायगी। जो लड़के कमजोर या शारीरिक दोष के कारण सैनिक शिक्षण का परिश्रम नहीं कर सकते, उन्हें कुछ व्यायाम कराया जायगा। स्नातकोत्तर छात्रों और विदेशी छात्रों के लिए राष्ट्रीय छात्र सेना में भरती अनिवार्य नहीं।

राष्ट्रीय सेना का मुख्य उद्देश्य छात्रों का चरित्र निर्माण करना और उनमें नेतृत्व और मिलकर काम करने के गुण उत्पन्न करना है। इसका यह भी उद्देश्य है कि देश के शिक्षित नौजवानों में देश रक्षा का उत्साह पैदा हो और देश की सेना को अच्छे अफसर मिल सकें।

राष्ट्रीय छात्र सेना को छोटे (जूनियर) और बड़े दो डिवीजनों में बाँटा गया है, और प्रत्येक में जल, स्थल और वायुसेना-तीन

शाखाएँ हैं। छोटे डिवीजन में १३ से १८॥ वर्ष के स्कूली छात्र और बड़े डिवीजन में कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के २६ वर्ष तक के छात्र होते हैं।

राष्ट्रीय छात्र सेना में लड़कों को अनेक बातें सिखायी जाती हैं। लड़कों के बड़े डिजाइन की स्थल सेना शाखा में टैंक, तोपखाना, पैदल, सिगनल, इलेक्ट्रिकल और मेकेनिकल इंजीनियरी और डाक्टरी टुकड़ियाँ होती हैं। इसी प्रकार वायुसेना शाखाओं में भी इन सेनाओं की विभिन्न शाखाओं के काम सिखाये जाते हैं। लड़कियों को सिगनल नक्शा पढ़ाने और घायलों की परिचर्या आदि की शिक्षा दी जाती है।

सन् १९५६ में अफसर ट्रेनिंग यूनिटें खोली गईं। इनमें बड़े डिवीजन के चुने हुए छात्रों को और अच्छी तरह सिखाकर उनको सेना में अफसर होने योग्य बनाया जाता है। इन यूनिटों में ७५० छात्रों की भरती होती है। यह प्रशिक्षण तीन साल चलता है।

सन् १९६० में एन० सी० सी० राइफल्स शुरू की गई। यह सेना की राइफल रेजिमेन्टों की तरह होती हैं। देश पर संकट आने के बाद निश्चय हुआ कि इसकी संख्या में चार लाख से अधिक की वृद्धि की जाय, जिससे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के सभी स्वस्थ लड़के इसमें भरती हो सकें। एन० सी० सी० राइफल्स छात्रों की कुल स्वीकृत संख्या सात लाख से अधिक है। अब अनिवार्य सैनिक शिक्षण शुरू होने के साथ एन० सी० सी० राइफल्स का भी विस्तार करना पड़ेगा और अनुमान है कि एन० सी० सी० राइफल्स के छोटे और बड़े डिवीजनों में अगस्त १९६३ के अन्त तक ९ लाख से भी अधिक कैडेट हो जायँगे। अनुमान है कि कालेजों और विश्वविद्यालयों में लगभग १२ लाख छात्र हैं।

राष्ट्रीय छात्र सेना को अनिवार्य बनाने का हमने जो निश्चय किया है वह बड़े महत्त्व का है। मुझे आशा है कि हम ऐसा ही कार्यक्रम स्कूलों के लड़कों के लिए भी शुरू करेंगे।

रस्सियों की सीढ़ी पर चढ़ने का अभ्यास

आगे हमें अपनी सेनाओं के लिए अधिक अधिकारियों की रूरत होगी। छात्र सेना के ये प्रशिक्षित युवक हमारी यह जरूरत री करेंगे। पिछले पन्द्रह वर्षों में हमारे लड़के-लड़कियों ने उत्साह

से एन० सी० सी० में नाम लिखाया है उससे यह विश्वास होता है कि हमारे नवयुवक और उसके माता-पिता अनिवार्य छात्र सेना का हृदय से स्वागत करेंगे।

श्री वाइ० बी० चह्वाण (प्रतिरक्षा मंत्री)
१५ अगस्त, १९६३

के बोले मा तुमि अबले

चीन के आक्रमण के कारण भारत में जिस राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ उसमें नारी भी पीछे नहीं हैं। एन० सी० सी० की सीमा का प्रतिदिन विस्तार हो रहा है। विद्यालय तथा कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियाँ बड़ी संख्या में एन० सी० सी० की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आगे कदम बढ़ा रही हैं। कलाई का शृंगार अब चूड़ियाँ नहीं बन्दूकें हैं।

एन० सी० सी० के लगभग मुख्य उद्देश्य हैं : युवक-युवतियों में चरित्र-सहयोग की भावना, सेवा का आदर्श और नेतृत्व की शक्ति विकसित करना। देश की सुरक्षा में रुचि उत्पन्न करने के लिए युवक-युवतियों को सैनिक शिक्षा देना। राष्ट्र की संकट कालीन अवस्था में सशस्त्र सेनाओं की त्वरित अभिवृद्धि के लिए सुयोग्य अफसरों का एक रिजर्व भाग बनाना।

एन० सी० सी० का संगठन छात्र और छात्राओं, दोनों के लिए ही निर्मित हुआ है। 'फर्स्टएड' से लेकर राइफल ट्रेनिंग तक छात्राएँ दक्षता प्राप्त कर रही हैं।

सौ-सौ चीनी को काफी बस अपना एक जवान है
हर सैनिक राणा प्रताप है थापा हर चौहान है

तेग शिवाजी की फिर से है मचल उठी हर म्यान में
चंगेज़ों की कब्र बनेगी शायद हिन्दोस्तान में
—'नीरज'

—भारतीय नारी को इस अवसर पर किसी से पीछे नहीं रहना है। आज की जिन्दगी में उसका अपना एक स्थान है। आज वह सिर्फ अपने ही बच्चों की माँ नहीं है, आज उसे भारतमाता का रूप धारण करके रणक्षेत्र में लड़नेवाले हर जवान की माँ के रूप में आना है। आज उसकी ममता को सागर की तरह व्यापक और गहरा होना है। आज उसके बच्चे चीनी दुश्मनों के घेरे में फँसे हुए हैं। आज उनके सीने जख्मों से चूर हैं और वे अपने प्यारों से दूर हैं। उन्हें कपड़ा चाहिए, उन्हें दवा चाहिए उन्हें खाना चाहिए, उन्हें उत्साह चाहिए, उन्हें आशीर्वाद चाहिए।
—सलमा सिद्दीकी

जहाँ साहस है वहीं विजय है

महाभारत के समय में संजय नामक एक राजा था। उसका राज्य मारवाड़ के दक्षिण में था। वह बड़ा ही आलसी और उत्साह-हीन था। उसकी माता का नाम विदुला था। वह बड़ी बुद्धिमती, उत्साही और वीर थी।

एक बार संजय के राज्य पर सिन्ध के राजा ने चढ़ाई की। संजय बहुत घबड़ाया। उसकी माता विदुला ने उसे ललकारा। अपनी वीर माता के उत्साह दिलाने से, वह अपने शत्रुओं से लड़ने के लिए तैयार हो गया। उसे रणभूमि के लिए विदा करते समय उसकी माता ने कहा—"बेटा! अपने देश की सीमा से आक्रमण-कारियों को भगाकर ही वापस आना।" लेकिन रणभूमि में शत्रुदल की विशाल सेना देख वह हतोत्साह हो गया। अपनी छोटी सेना

के साथ वह किसी तरह लड़ा, लेकिन शीघ्र ही हार गया। भाग कर, वह अपनी वीर माता के क्रोध के भय से अपने महल में नहीं लौटा और पहाड़ में जा छिपा।

जब उसकी माता विदुला को अपने बेटे की कायरता का पता चला, वह आगबबूला हो उठी। वह उस पहाड़ पर पहुँची जहाँ प्राण के भय से संजय छिपा बैठा था। विदुला उसे देखते ही सिंहनी की तरह गरज उठी—"तू मेरा बेटा नहीं। अपने कुल में दाग लगाने वाला कायर है। तू अपमान सह कर भी जीना चाहता है। अपने देश की आजादी गंवाकर जीने से मौत ही भली होती है। उठ! तलवार हाथ में ले! और शत्रुओं को देश की सीमासे बाहर ढकेल दे!......"

संजय ने रोनी-सी सूरत बना ली। बोला—'माँ, मुझे क्यों मौत के मुंह में ढकेलना चाह रही हो! जब मैं ही न रहूँगा तो राज का सुख कौन भोगेगा!"

विदुला अपने भड़कते क्रोध को दबा कर बोली—एक दिन तुझे मरना ही है तो मरने से डरता क्यों है! रणभूमि में मरेगा तो वीरगति प्राप्त होगी और विजयी होगा तो संसार में तेरा यश फैलेगा। साहस मत छोड़ और अपने देश की स्वाधीनता के लिए रणभूमि में जा!"

"माँ, सिन्ध-राजा के पास बहुत बड़ी सेना है...."

"लेकिन उसने तेरे देश को हड़पने के लिए चढ़ाई की है इसलिए वह लुटेरा है। लुटेरों की आत्मा में बल नहीं होता। वे चोर की तरह होते हैं। तू अपनी सेना इकट्ठी कर, शत्रुओं को चींटी की तरह मसल दे!"

'सेना को बलशालिनी बनाने के लिए मेरे पास धन नहीं।"

'तू दिल से भय को निकाल दे और धीरज के साथ साहस से

काम ले! अपने देश के धनवानों को बतला कि लुटेरों से वे अपने धन की रक्षा करना चाहते हैं तो सेना के लिए कुछ धन का दान करें। सब कुछ गवाँ देने के बदले वे थोड़ा-थोड़ा धन दे देना सहर्ष स्वीकार करेंगे।"

"माँ, मेरे विरोधी भी हैं जो मुझसे ईर्षा और द्वेष रखते हैं। मुझे भय है कि वे दुश्मनों के साथ मिल जाएँगे।"

"तू पर्वत के समान कठोर बन जा! ऐसे घर के भेदी लोगों को पहले बातों से समझा। वह महानीच ही होगा जो अपनी स्वतन्त्रता देकर, दासता स्वीकार करेगा। वे बातों से न मानें तो तलवारों से उन्हें वश में कर! उनपर सदा निगरानी रख!"

अपनी बुद्धिमती वीर माता की बातों से संजय का साहस लौटा। वह सोया सिंह जाग उठा। उसने अपनी माँ का चरण छू कर प्रण किया—"माँ, जब तक लुटेरों को अपने देश की सीमा से भगा नहीं दूँगा तब तक आराम को हराम समझूँगा। प्राण दे दूँगा लेकिन अपने देश को गुलाम नहीं बनने दूँगा।"

विदुला प्रसन्न हुई। उसने अपने पास के कुल हीरे-जवाहर संजय को दे डाले। संजय ने सेना बढ़ायी और एक दिन सेना के वीरों से कहा—"साथियो! हमारे देश को विदेशी लुटेरे हड़पना चाहते हैं। वे देश की सीमा के भीतर घुस आये हैं। अपमानित होकर जीने से दुश्मन को मारते-मारते मर जाना ही वीरों के लिए शोभा की बात है। तुम लोग जान हथेली पर लेकर, आगे बढ़ो! शत्रु दल पर बिजली की तरह टूट पड़ो! अपनी धरती से उनका नामोनिशान मिटा डालो! तुम्हारी वीरता देख संसार चकित रह जाय। फिर कोई हमारे देश की ओर आँख उठाने का दुस्साहस न करे!"

वीर सैनिकों की भुजाएँ फड़क उठीं। वे धरती को कँपाते हुए, हमलावरों पर टूट पड़े। उनकी वीरता और देश के लिए बलिदान की भावना देख शत्रु घबड़ा कर, भाग गये। सजय ने अपने देश की धरती पर अधिकार कर लिया।

वीर माता विदुला ने अपने विजयी बेटे का माथा चूम कर कहा—"बेटा, जहाँ साहस है वहीं विजय है।"

देशद्रोही के लिए क्षमा नहीं

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का भाव जिसके हृदय में भरा हो, वह जन्मभूमि के लिए सर्वस्व त्यागने में सकोच नहीं करता चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। वीरमती देवगिरि-नरेश के स्वर्गवासी प्रधान सेनापति की कन्या थी।

अलाउद्दीन ने देवगिरि पर आक्रमण किया था, किन्तु देवगिरि वालों की अपूर्व वीरता और एकता की भावना से निराश हो अपनी सेना के साथ लौट गया था। अचानक सूचना मिली, आक्रमणकारी भागा नहीं, किन्तु कपटनीति का सहारा लेकर, देवगिरि के चारों ओर मोर्चाबन्दी कर रहा है।

वीरमती के पति कृष्णराव पर देवगिरि वालों ने यह भार सौंपा कि वह गुप्तरूप से आक्रमणकारी की गतिविधि का पता लगाये।

कृष्णराव अपनी पत्नी से विदा माँगने पहुँचा। उसके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव देख वीरमती सदेह से भर गई।

और उसने बुद्धि-चातुर्य से यह पता लगा लिया कि कृष्णराव राज्य-सिंहासन पर बैठने का सपना देख रहा है। उसका संदेह बढ़ गया।

कृष्णराव के विदा होते ही वीरमती ने पुरुष-वेश धारण किया। तलवार कमर में बाँध ली और घोड़े पर सवार हो अपने पति का पीछा करने लगी।

कृष्णराव एक घने जङ्गल में घुसा।

वीरमती उसे जङ्गल में खोजने लगी।

अचानक कृष्णराव की आवाज उसे सुनाई पड़ी। वह किसी अपरिचित से बातें करने में संलग्न था। वीरमती छुप कर उन दोनों की बातें सुनने लगी।

उसका संदेह विश्वास में बदल गया। उसका पति कृष्णराव शत्रुओं से मिला हुआ था। अपरिचित, उसके देश के दुश्मन अलाउद्दीन का आदमी था। कृष्णराव आक्रमणकारियों से अपने देश की स्वतंत्रता बेंच कर, बदले में सूबेदारी चाहता था।

वीरमती की आँखों में खून उतर आया। देश द्रोही को वह क्षमा नहीं कर सकती। उसने म्यान से तलवार निकाली और एक ही प्रहार में कृष्णराव को यमलोक पहुँचा दिया।

आक्रमणकारी का दूत सामने साक्षात् दुर्गा की तरह वीरमती को देख भाग गया।

वीरमती क्रोधावेश में काँप रही थी। उसने अब तक जिसपर अपना प्यार लुटाया वह एक कायर, घृणित देश द्रोही था।

उसने वहीं खून से भरी तलवार द्वारा आत्महत्या कर क्षोभ और ग्लानि से मुक्ति पाई।

स्वतन्त्रता की पुजारिन

किसी जाति या राष्ट्र के निर्माण-कार्य में जितनी सहायता पुरुष कर सकते हैं, स्त्रियाँ उनकी अपेक्षा किसी तरह कम सहायता नहीं कर सकतीं।

स्वतन्त्रता और गौरव की रक्षा के लिए आत्म त्याग और स्वार्थ-त्याग का अद्वितीय उदाहरण दे गई चित्तौड़ की एक परम सौन्दर्यमयी वीर बाला विद्युलता।

उसे समरसिंह नामक एक सैनिक ने अपने प्रेम-जाल में फाँस रखा था जो चित्तौड़ की सेना में था।

सत्रह वर्षीया विद्युलता तीर और तलवार चलाना जानती थी। घुड़सवारी भी करती थी। वह समरसिंह को अपने प्राणों से अधिक चाहती थी।

एकदिन समरसिंह ने विद्युलता से चित्तौड़ से बाहर चुपके से भाग चलने के लिए कहा। विद्युलता ने कारण पूछा तो उसने कहा–

"अलाउद्दीन की विशाल सेना चित्तौड़ पर चढ़ाई करने आ रही है। उस यु० में निश्चय मेरी मौत होगी। फिर तो तुम रो-रो कर जान दे दोगी। इसलिए मैं शिविर से चुपचाप निकल आया हूं।"

विद्युलता उसके मनका अभिप्राय समझ गई कि वह रूप के उन्माद में मस्त है इसलिए युद्ध से कायरों की तरह जी चुराना चाहता है। उसने समरसिंह को उसकी कायरता के लिए धिक्कारा और स्पष्ट कह दिया कि एक देशद्रोही को वह पति के रूप में नहीं स्वीकार करेगी। यदि समरसिंह को उससे वास्तव में प्यार है तो वह वीरों की तरह रणभूमि में जाकर शत्रुओं को देश की सीमा में घुसने न दे।

स्वतंत्रता की दिवानी वीर क्षत्राणी विद्युलता के सामने समरसिंह की एक न चली। उसने उदास हो विद्युलता से रण के लिए विदा माँगी।

विद्युलता प्रसन्न हुई कि उसका भावी पति बाल्य सखा समरसिंह स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शत्रुओं के छक्के छुड़ाने जा रहा

है। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। समरसिंह शत्रुओं से जा मिला। उस देशद्रोही कायर ने शत्रुओं को चित्तौड़ की सेना का रहस्य और गुप्तमार्ग बतला दिया। चित्तौड़ का सत्यानाश हो गया।

समरसिंह के लौटने में विलम्ब हुआ। विद्युलता समझ बैठी उसके भावी पति ने देश की रक्षा में शत्रुओं से लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त की। समरसिंह के प्रति उसका अनुराग बढ़ गया।

सहसा एक दिन समरसिंह उसके सम्मुख उपस्थित हुआ। विद्युलता का मुख-कमल खिल उठा, किन्तु क्षण भर पश्चात् ही उसकी आँखों से अंगारे बरसने लगे। समरसिंह के साथ शत्रुदल के सैनिक थे। वह सारा रहस्य समझ गई थी।

समरसिंह ने प्रेमावेश में कहा—"प्राण प्रिये!"

विद्युलता डपट कर बोली—"सावधान! तू देशद्रोही नीच और कायर है। जिस मातृभूमि से पल कर तू बड़ा हुआ है उसके साथ तूने विश्वासघात किया है। तेरे ही कारण चित्तौड़ का सर्वनाश हुआ। वीर सती ललनाएँ सतीत्व रक्षा के लिए चिता में जल मरीं।....तू मेरी आँखों के सामने से दूर हो जा! मैं तेरा मुँह देखना भी पाप समझती हूँ।"

समरसिंह के पाँवतले धरती खिसक गई। वह सँभल कर बोला—"विद्युलते! मैंने जो कुछ किया तुझे प्राप्त करने के लिए ही किया। मैं तेरे बिना जीवित नहीं रह सकूँगा।"

विद्युलता रो पड़ी। रोते रोते बोली—"क्या मेरा रूप मेरी मातृभूमि के सर्वनाश का कारण बना? भला मुझे पहले यह ज्ञात होता! यह दिन तो नहीं आता। मातृभूमि, मुझे क्षमा करना!...."

और उसने अपनी छाती में कटार मार ली। स्वतन्त्रता की दिवानी अपनी प्यारी मातृभूमि की गोद में सो गयी।

आक्रमणकारी के सामने जो झुकी नहीं

आत्म-गौरव और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए, मर मिटने वाली स्वाभिमानी नारी थी वीरांगना दुर्गावती। वह मण्डला-नरेश की रानी और महोबा के राजा चन्देलसिंह की कन्या थी।

मण्डला-नरेश दलपति सिंह जब तक जीवित रहे, स्वतन्त्र रहे। उनकी वीरता और युद्ध कौशल-निपुणता के कारण मुगल सम्राट अकबर ने उनसे युद्ध छेड़ने का साहस नहीं किया। किन्तु दलपति सिंह के मरते ही आसफ खाँ बड़ी सेना के साथ मण्डला आ पहुँचा।

विधवा रानी दुर्गावती को खबर मिली कि शत्रुओं ने मण्डला घेर लिया है। वह तनिक भयभीत नहीं हुई। उसने भयातुर प्रजा को आश्वासन दिया और अपने वीर सैनिकों को अपने पुत्र वीर-वल्लभ के सेनापतित्व में, शत्रुओं को मार भगाने के लिए भेजा। स्वयं भी वह युद्ध भूमि में उपस्थित हुई। अपने सैनिकों को उत्साह दिलाते हुए, वह साक्षात् दुर्गा बनी शत्रुओं का संहार करने लगी।

असीम साहस के सामने आक्रमणकारी टिक न सके। वे रण से भाग खड़े हुए। एक नारी से पराजित होने के कारण आसफ खाँ बड़ा क्षुब्ध हुआ। उसने बारह वर्षों तक बार बार मण्डला पर चढ़ाई की और हर बार वीरांगना दुर्गावती ने उसे मुँहकी खिलाई। १५६४ ई० में अकबर ने बड़ी तैयारी के पश्चात् आसफ खाँ के अधीन विशाल सेना भेजी। युद्ध छिड़ गया।

राजकुमार वीरवल्लभ काल का रूप धारण कर, शत्रुओं का संहार करने लगा। दो बार उसने शत्रु सेना को मार भगाया। तीसरी बार आक्रमणकारी षड्यन्त्र कर लौटे। वह षड्यन्त्र वैसा ही था जैसा वीर अभिमन्यु के वध के लिए कौरवों ने रचा था।

आक्रमणकारियों का दल वीरवल्लभ पर टूट पड़ा। भीषण नर

संहार हुआ। वीरनारायण घायल होकर गिरा। दुर्गावती सिंहनी की भाँति टूट पड़ी। घायल पुत्र को शिविर में भेजवाया और तीन सौ सैनिकों के साथ शत्रुओं का संहार करने में लगी रही।

झुण्ड के झुण्ड आक्रमणकारी दुर्गावती पर टूट पड़े। दुर्गावती के गले और आँखों में कई तीर लगे। अंग-अंग जख्मी हो गया। खून की धारा बहने लगी, किन्तु वह अंतिम सांस तक शत्रुओं के संहार का प्रण किये बैठी थी।

एक सरदार ने रानी के खून से लथपथ जख्मी शरीर को देख कर अनुमान लगाया कि वह कुछ ही समय की मेहमान है। उसने दुर्गावती से विनयभरे स्वर में कहा, 'पराजय स्वीकार कर लीजिए!'

वीरांगना दुर्गावती गरज उठी—'कभी नहीं। एकदिन तो मौत आएगी ही फिर आक्रमणकारी के आगे शीश क्यों झुकाऊँ!'

और जब जख्मों से लगातार खून बहते रहने के कारण दुर्गावती शिथिल पड़ने लगी तो स्वयं अपनी तलवार से अपनी गर्दन उतार स्वतंत्रता की देवी पर भेंट चढ़ा दी।

मुण्ड की माला

स्वाभिमान पर आँच आने के समय, और देश की स्वाधीनता के लिए, भारत की वीर बेटियाँ किस प्रकार अपने बलिदान से उत्साह और साहस का दीप जलाये रखती थीं—इसका एक सबल प्रमाण है हाड़ा रानी।

रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती की सुन्दरता की ख्याति मुगल सम्राट औरंगजेब के पास पहुँची थी। वह प्रभावती से विवाह करने के लिए अधीर हो उठा था। प्रभावती के पिता विक्रमसिंह में मुगलसम्राट के आदेश का उलंघन करने का साहस न था।

प्रभावती ने अपने पिता को मौन देख राजसिंह के पास संवाद भेजा। वह औरंगजेब से विवाह करने के लिए तैयार न थी। राजसिंह ने प्रभावती का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

मुगल सम्राट की विशाल सेना चली। राजसिंह ने अपनी सेना को दो भागों में बाँटा। एक भाग के थोड़े सैनिकों के साथ वे प्रभावती की रक्षा करने रूप नगर की ओर बढ़े और दूसरे भाग को वीर सरदार चन्दावत की अधीनता में, मुगल सम्राट की सेना को राह में रोकने के लिए, भेजा।

बीस वर्षीय चन्दावत तीन दिन पूर्व ही विवाह कर, हाड़ा रानी को घर में लाया था। सेना के साथ वह शत्रुसेना का मुकाबला करने तो बढ़ा, किन्तु उसका ध्यान अपनी सोलह वर्षीया रूपवती पत्नी की ओर ही था।

वीर रमणी हाड़ारानी यह आशा लगाये बैठी थी कि उसका वीर पति विजय प्राप्त कर शीघ्र ही रण से लौटेगा और वह उसके गले में फूलों की माला पहनायेगी, किन्तु उसे यह खबर मिली कि उसका पति तो मोहग्रस्त है।

उसके कान खड़े हुए। मोहग्रस्त को भला उत्साह क्या होगा! शिथिलता तो कायरता को जन्म देती है।.....क्षणभर में उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित किया। उसने एक पत्र लिखकर अपनी दासी को दिया और आदेश दिया कि मेरे कटे हुए मुण्ड के साथ उसे मेरे पति के पास भेजवा देना। उसके बाद उसने अपनी तलवार से अपनी गर्दन उतार दी।

चन्दावत को रणभूमि में अपनी पत्नी के मुण्ड के साथ उसका, कर्त्तव्य का ज्ञान कराने वाला, पत्र मिला। उसने अविलम्ब हाड़ारानी के मुण्ड के लम्बे बालों में गाठ लगायी और मुण्ड की माला पहन ली।

फिर तो वह साक्षात् यमराज बना शत्रुओं पर टूट पड़ा। और उस समय तक उसकी खून में सनी तलवार शत्रुओं की गर्दन उतारती रही जब तक उसका शरीर क्षत् विक्षत होने से उसकी साँस उखड़ न गई। झाँसी रानी मर कर भी अमर हो गई।

—"जब स्त्रियाँ मजबूत और दृढ़ प्रतिज्ञ होंगी तो पुरुषों के हौसले स्वतः बढ़ेंगे और शत्रु का मुकाबला करने के लिए उनमें नित्य नया जोश उमड़ेगा"....

महाराष्ट्र स्टेट वुमेन कौन्सिल की अध्यक्षा श्री मती एलिसखान।

—"मोर्च पर डटा हर जवान किसी का भाई, बेटा या पति है और उसकी वह जितनी सहायता कर सके, थोड़ी है...."

सिंधिया स्टीम नेवीगेशन की कर्त्ता-धर्त्ता श्री मती सुमति मोरार जी।

—एकदिन मैंने ही तुम्हें कितने प्यार से
तुम्हारी मन पसन्द की दो सोने की चूड़ियाँ
खरीद कर दी थीं!
किन्तु उसके बाद से आज तक
मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे पाया हूँ।
फिर भी सच-सच बताओ
तुम्हारे हाथों क्या आज
ये सोने की दो चूड़ियाँ
शोभा पाती हैं?
मेरी लाड़ली बहन,
इन चूड़ियों को खोलकर
बाजार में बेच आओ
और कुछ पौंड ऊन खरीद लाओ।

जब पहाड़ की भीषण सर्दी में
तुम्हारे भाइयों का खून जम कर बर्फ बन रहा हो,
उस समय क्या तुम्हारे हाथों में
उसी भाई की दी हुई सोने की चूड़ियाँ
शोभा पा सकती हैं ?
इसीलिए, कहता हूँ, प्यारी बहन,
ऊन और सलाइयाँ ले आओ
आज कालेज, गर न भी जा पाओ
(तो भी) बुनना शुरू कर दो
स्वेटर और मफलर।
आज का दोपहर गप-शप में,
सोकर या कहानी की पुस्तक पढ़ कर
बेकार न गँवा देना !
मेरी प्यारी बहन !
तुम्हारे भाई भीषण सर्दी में
पिस्तौल और बन्दूक सम्भाले—
एक घृण्य, नीच रक्त लोलुप
पशु के साथ मुकाबला कर रहे हैं।
उनके लिए
आज की रात, गर तुम सो भी न पाओ
(तो भी) तुम्हें स्वेटर और मफलर बुनने
ही होंगे ! मेरी प्यारी बहन !
तुम्हारे भाई अगर इस भीषण सर्दी में
तुम्हारे स्नेह की उष्णता का किंचित स्पर्श
भी न पा सकें,
(तो फिर) सच-सच बताओ, मेरी लाड़ली बहन,

क्या तुम्हारे हाथों में शोभा पा सकती हैं
उसी भाई की दी हुई
दो सोने की चूड़ियाँ ?

—दीपक गंगोपाध्याय

—मेरे सोना भाई,
तुम्हारी चिट्ठी ने मेरी आँखें खोल दी हैं,
खोल दी हैं मैंने अपनी बहुत साधों-भरी
सोने की चूड़ियाँ।
सच भाई, हमारे हाथों में चूड़ियाँ
अच्छी नहीं लगती हैं,
हमारे जवान भाई लड़ रहे हैं आज,
माँ का सम्मान बचाने के लिए।
उनके उन कष्टों और साधनाओं की बातें
सुनकर हमें अब
सोने की शौकीनी अच्छी नहीं लगती है।
सोना नहीं ही रहे तो क्या है !
मेरे सोना भाई, तुमलोग तो हो,
तुमलोग ही हो हमारे सोना, हमारी सम्पत्ति;
इस ऐश्वर्य के सामने
तुच्छ नहीं हैं क्या सोने की दो-चार चूड़ियाँ ?
प्यारे-दुलारे भाई मेरे,
भयानक शीत में तुम्हारे कष्टों की बातें जानकर
मैं शांत-स्थिर नहीं रह सकी हूँ।
घर-बार का खर्च बचाकर
खरीद लायी हूँ थोड़ा ऊन,
दोनों हाथों से चलाये जा रही हूँ; काँटे लगातार

जितनी जल्दी हो,
कुछ एक स्वेटर बुनकर भेजूँगी,
तुम्हारे लिए,
अपनी श्रद्धा और प्यार का चिह्न!
माँ के सम्मान की रक्षा के लिए
जो प्राणपण से लड़ रहे हैं,
मैं तो उन्हीं की सोना-बहन हूँ!

—वन्दना राय

● *सैनिक बेटे का पत्र—प्यारी माँ को*

प्यारी माँ, मेरी भोली-भाली माँ,

बारम्बार चरण वन्दना।

तुम्हारा पत्र मिला। शाम, शंकाओं को अपनी गोद में छिपाये आगे बढ़ रही है, प्रायः रोशनी अदृश्य हो गयी है। एक हाथ में बेशर्म चीनियों की मौत का सार्टिफिकेट और दूसरे हाथ में कभी तेरा पत्र; बार-बार मस्तक से लगाता हूँ, एक पत्ते की खड़खड़ाहट तेरे पत्र की नीलामी कराके जबरदस्ती हाथ बन्दूक के घोड़े पर पहुँचा देती है। माँ, क्या ही प्रेम और कर्त्तव्य का समन्वय है! कर्त्तव्य जिसे आज परिस्थितियों ने उत्तेजित किया है—तेरे प्रति प्रेम पर पूर्ण प्रभुत्व पा चुका है। आश्चर्य है, मुझमें इतना महान अन्तर कैसे! होना चाहिए माँ, तू ही नहीं, देश की आत्मा मुझे पुकार रही है। जी चाहता है कि पत्र पढ़ूँ, सुबह का क्या भरोसा! नहीं, नहीं! यदि सुबह तक इन बेशर्मों को रोके रहा तो माँ, प्रथम किरण के साथ तेरा पत्र खोलूँगा।

सेकेण्ड मिनट निकलते जा रहे हैं, नींद क्या होती है! और साथ ही हम आज तक कुछ भूल बैठे। नहीं तो कभी तक

चारपाई पर नींद नहीं आती तो सोचा करता था कि माँ कि देखभाल करने के लिए कोई अच्छी सी नौकरानी (तेरे शब्दों में बहू) तलाश कर लेता। लेकिन आज ये योजनाएँ भी उतनी ही शंकास्पद हैं जितना इन बेईमानों का आक्रामक दुस्साहस। माँ-भारती के श्वेत केशों पर इन पाजियों ने हाथ डाला है न? इनको मौत के घाट उतार कर ही दम लूँगा।

इन गीदड़ों को अगणित संख्या में तो हमलोग मार चुके हैं। ये तो टिड्डीदल हैं, चीन में जब कुछ खाने को न मिला तो उमड़ पड़े भारत-सीमा पर। सोचा होगा कि वैसे ही भुखमरी से मरना फिर क्यों न भारत की गोलियाँ खर्च करायी जायँ?

पैर में चोट आने से कमाण्डर ने अस्पताल भिजवा दिया। मेरी इच्छा तो नहीं थी। जी चाहता है कि अभी उठकर भाग जाऊँ और उस दुस्साहसी चीन को यह बताऊँ कि यह देश शूरवीरों का है।

लो देखो, हवाई जहाज उड़ाने भरता आ रहा है। पैकेट गिरे। किसी में जर्सियाँ-किसी में मफलर-किसी में मोजे और कुछ पैकटों में मिठाइयाँ। क्यों माँ? जब मैं छोटा था तो तू दिवाली को निरे सारे दिये जलाती और मिठाइयाँ तैयार करती थी। लेकिन माँ, हमें पता नहीं कि दिवाली कब है किन्तु दिवाली के बाद का त्योहार, जिसमें बहन भाई को मिठाई खिलाती है और भाई फिर कुछ भेंट देता है। तू कहती थी न कि तेरी कोई बहन नहीं है। जब मैंने एक पैकेट खोला, उसमें एक स्लिप पर लिखा था:

भइया!

भइया-दूज के पवित्र अवसर पर यह छोटी-सी भेंट भेज रही हूँ। हम सब तुम्हारे साथ हैं, बहादुरी से डटे रहना।

आपकी बहनें—रजनी, नीना आदि।

मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा और जी चाहा कि इन बहनों से यदि एकबार मिल पाता। आज मेरी हजारों बहनें हैं—यह सोचते हुए होंठों पर मुस्कुराहट आती है कि इन वेशमों ने हमें एक सूत्र में बाँध दिया। आज तू एक मेरी माँ नहीं बल्कि लाखों माताएँ-बहनें हैं जिनकी कोमल अंगुलियों से बुनी जर्सियाँ तथा मफलर हम पहन रहे हैं। माँ, मैं सौगन्ध खाता हूँ इस उठती हुई जवानी की कि खून की आखिरी बूँद तक भारत माँ की आबरू की रक्षा करूँगा।

बाकी फिर समय मिलने पर.....

तुम्हारा बेटा,
वीरेन्द्र 'वीर'

—नगराज हिमालय ने आवाज लगायी है,
जागी बलिदानी भारत की तरुणाई है,
सरहद की घाटी-घाटी हल्दीघाटी है,
राणा प्रताप ने फिर तलवार उठायी है!
पवत को भय कैसा अंधड़-तूफानों का,
बढ़ता जाता हरदम हौसला जवानों का,
आजाद वतन के गरम खून का हर कतरा
इतिहास लिखा करता अपने अभियानोंका!
—रमेशचन्द्र झा

● जो खेतों में सोना उगाते हैं

स्वतन्त्रता- प्राप्ति के पश्चात् चीनी आक्रमण के कारण जो सब से बड़ा संकट हमारे राष्ट्र पर आया है, उसको दूर करने में हम सब भारतवासी, खास कर किसान भाई बहुत-कुछ कर सकते हैं। इन

दिनों अन्न के एक दाने की जगह दो दाने पैदा करना देश की सबसे बड़ी सेवा करना है।

इस संकट का असर न केवल हमारे वर्त्तमान पर, वरन् हमारे भविष्य पर भी पड़ेगा। प्रधानमंत्री श्री जवाहलाल नेहरू जी ने अपील की है कि इस संकट में ऐसी फसलें, साग-सब्जियाँ और अण्डे वगैरह पैदा किए जाएँ जिनकी हमारे जवानों को जरूरत है।

राष्ट्र की आन, शान और गौरव को ऊँचा करने के लिए कृषि में लगे छोटे-बड़े सभी लोगों को अपना-अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए।

सावधान !
मेरे किसान !
तुम बोओ ऐसा बीज
कि जिससे पैदा हो,
खेतों में ऐसी हरियाली
ऐसी बाली
निकले जिससे ऐसा दाना
जिससे भारत के वीरों की
आँखों में फिर से एक बार
जग जाए जागरण का विहान
मेरे किसान !
मेरे किसान !!

●

तुम बोओ ऐसा बीज
देश के खेतों में
भारत में फिर से

हों सिंह खिलौना भर जिनको
जो भर दें
मरने मिटने का जोश
धरणि के कण-कण में
हो ज्योति मान !
मेरे किसान !
मेरे किसान !!
तुम बोओ फिर से एक बार
ऐसा अनाज
जिसको खाकर
'जीजा बाई' सी माताएँ
देती हैं जन्म शिवाओं को
गूँजे फिर से सिंहनाद
भारत के कोने-कोने में
जिसको सुन कर के दुश्मन की
सेना भागे
हिम्मत हारे
मिट जाए नाम, उसका निशान
मेरे किसान !
मेरे किसान !!

●

यह समय नहीं है सोने का
है उठने का
खेतों में पौरुष बोने का
देखो सीमाओं पर दुश्मन ललकार रहा ।

वह तिब्बत और तवांग तुम्हें
गीली-गीली आँखों से आज निहार रहा
है आज पुकारा फिर से भारतमाता ने
गूंजा है फिर से शंखनाद
आरती सजाए बैठी हैं
माताएँ, बहनें, ललनाएँ,
घर-घर के तोरण द्वारों पर
फिर सो लेना
खुश हो लेना
पहले भारत पर कर दो खुद को न्योछावर
मेरे हलधर !

०

मत भूले रहना रासों और विलासों में,
लुट जाए न आँखों के आगे,
मोहन का मथुरा-वृन्दावन
यमुना की अल्हड़ लहरों पर
दुश्मन की परछाईं न पड़े
हो सावधान !
मेरे किसान !

०

मेरे हलधर !
हलधर ! तुम बन बलराम आज
उठ चलो जिन्दगी बोनी है—
रण खेतों में ।

है इसे सींचना लोहू से
पाना है फिर से स्वाभिमान
रे सावधान !
मेरे किसान !
—प्रेमशरण शर्मा

शत्रु के रक्त का पर्व है स्नान कर !

पूर्ण तैयार होकर चीनी सैनिक वालोंग की ओर बढ़े। आक्रमण पर आक्रमण किया, किन्तु भारतीय जवान चट्टान की तरह अडिग रहे। स्वचालित अस्त्रों का प्रयोग किया, तोपों से गोले बरसाये गये, किन्तु भारतीय जवानों के बढ़े हुए हौसले के आगे आक्रमणकारियों को पीछे हटना पड़ा। भारतीय सैनिकों ने १५ नवम्बर को वालोंग क्षेत्र की एक अगली चौकी पर अधिकार कर लिया, उनकी रगों में आग का दरिया बह रहा है।

—अपने देश के लिए हम बर्फ में समूचे जम गये हैं !
हमारी रगों का लहू फिर भी
प्रवाहित है धमनियों में तीव्रगति से
बर्फ जितनी और पड़ती है हमारे जिस्मपर
हवाएँ भूखी डायनों सी और जितना चीखती हैं
हमारे भीतर की आग और उतनी तेज होती है !
मत समझो—हमारे पौरुष कुम्हला गये हैं !
मत समझो—ये बर्फ की दीवारें तुम्हारी हैं !
बर्फ में दब कर हम मरे नहीं,
केवल हमने मोर्चे गढ़ लिये हैं बर्फ में !
हमारे दिलों में अब भी आग की खदानें हैं !

हमारे खिलाफ इस तरह के सिपाहियों को झोंका गया है, जिनमें से हरएक के पास हथियार नहीं होते। जब एक सिपाही मर जाता है तो उसका हथियार उससे पीछेवाला उठा लेता है। उन्हें इसकी आदत है और वे इन्सान की जिन्दगी की कोई कीमत नहीं समझते।

—वी० के० कृष्णमेनन

चीनी हमलावरों ने फिर जोरदार आक्रमण किया। अपने मोर्चे पर डटे भारतीय जवान उन्हें यमलोक पहुँचाने के लिए महाकाल बन गये। चीनी सैनिक को भेड़-बकरे की तरह मरने की परवाह न थी। समुद्र की लहरों की तरह चीनी सैनिकों की लहर पर लहर आती रही।

तापमान शून्य से भी नीचे : चौदह हजार फुट की ऊँचाई की ठण्डक। बर्फ में लड़ने का अभ्यास नहीं। हथियारों की कमी और शत्रुओं के मुकाबले बहुत कम संख्या। सांस लेने में भी कठिनाई और पीने का पानी भी दुर्लभ। फिर भी अपने स्वदेश के प्रेम और स्वतन्त्रता की रक्षा में भारतीय जवानों ने जो पराक्रम दिखाया वह इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय बन गया। संसार में भारतीय जवानों के इस शौर्य का उदाहरण शायद ही मिले—जब कि अनुभवी और आधुनिक आयुधों से पूरी तरह लैस अपने से पाँचगुनी अधिक सख्या वाले दुश्मनों को किसी देश के सैनिक ने अपनी वीरता और साहस के बल पर हफ्तों आगे बढ़ने से रोक रखा हो।

चीनी सैनिकों ने रात में बगल से और पीछे से आक्रमण किया किंतु भारतीय वीरों की सतर्कता के आगे उनका कुप्रयत्न व्यर्थ हुआ। आखिर घनघोर लड़ाई के पश्चात् चींटियों की तरह चीनियों की कभी न टूटनेवाली कतार के कारण, उनसे डटकर मुकाबला करने के लिए भारतीय जवानों ने १७ नवम्बर तक वालोंग खाली कर दिया।

वालोंग से हटते समय कितने, चीनियों के घेरे में आ गये जिनमें अनेक अन्तिम सांस तक लड़ते रहे।

'सेला' के पास मुख्य मोर्चे पर, रौद्ररूप धारण किये वीर भारतीय चीनियों की प्रतीक्षा करने लगे। चीनियों ने कपट की नीति से काम लिया। उनकी एक टुकड़ी सेलादर्रे की अग्रिम चौकी पर भारतीयों के सामने लोहे के चने चबाती रही और उनका दूसरा दल बगल से जंगल होकर, आगे बढ़ गया। बोमडिला और 'सेला' को मिलाने वाली सड़क काट कर चीनी बोमडिला में घुसे। 'सेला' में भारतीय सैनिक घिर गये। सामने भी चीनी सैनिकों की भेड़िया-धसान टुकड़ी और पीछे से कुमक अथवा सैनिक आपूर्त्ति का—सड़क कटने से—सम्बन्ध विच्छेद।

—फाँस मौत की गले में हो फँसी,
होंठ पर मगर रहे वही हँसी।
मूर्त्ति मातृभूमि की हिये बसी,
जीत की कसम कलेजे से कसी।
हाथ में स्वदेश का उड़े निशान

लाल हिन्द के कुटिल कराल वन,
वासुकी विपाक्त क्रुद्ध व्याल वन।
नाश की मशाल तीव्र ज्वाल वन,
शत्रुओं के हेतु कूट काल वन।
इम्तहान है तुम्हारा, इम्तहान

—हंसकुमार तिवारी

नवम्बर को बोमडिला का शत्रुओं पर अधिकार हो गया। वे तेजपुर की ओर बढ़े। आसाम में संकट की घड़ी उप-चीन का उद्देश्य भारत के तेल वाले क्षेत्र पर अधिकार

करता है—यह स्पष्ट दीख पड़ा। तेजपुर में सुरक्षा की व्यवस्था होने लगी। प्रधान मन्त्री नेहरू ने राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित करते हुए कहा—'हिम्मत नहीं हारनी चाहिए, रक्षा की कोशिश अंतिम दम तक की जायगी, अंत में हमारी जीत निश्चित है......"

चीनी अजगर को चुनौती :

इस तरह सब्र का सीमा पे न डाका डालो,
हमने हमलों के ये तूफान बहुत झेले हैं।
हम हँस-हँस के लगे हैं गले शमशीरों के,
मौत की आग से खुल-खुल के बहुत खेले हैं।
आग जो तुमने लगायी है, उसकी लपटों में,
जल के जो खाक न हो जाओ तो हमसे कहना।
तुमको रिश्ते से पड़ोसी के यह समझाते हैं,
आग औ बर्फ की यह आग है, बच के रहना।

श्याम कृष्ण

● लद्दाख और वहाँ के लोग

लद्दाख में चीन का आक्रमण १९५६-५७ में ही शुरू हो गया था, जब उन्होंने पूर्वी लद्दाख में अक्साई चिन लिंगजीतंग से होकर सौ मील की सड़क बनाई। सितम्बर १९५७ और नवम्बर १९५९ के बीच इस सड़क से सालद से चालीस मील पश्चिम के क्षेत्र में चीनियों ने चौकियाँ बनायीं। ८ सितम्बर, १९६२ तक वे साठ मील और पश्चिम में चले गए और इस क्षेत्र तथा सिकियांग—तिब्बत सड़क को तीन सड़कों से जोड़ दिया।

२० अक्टूबर, १९६२ से अपने बड़े हमलों द्वारा चीन ने इसके पश्चिम में २५०० पचीस सौ वर्गमील का क्षेत्र हड़प लिया। इस

प्रकार वे उस रेखा तक और कहीं-कहीं, उससे भी आगे पहुँच गए, जिसे वे परम्परा से मानी जाने वाली, सीमा-रेखा कहते हैं और उनके अधिकार में कुल १४,५०० वर्गमील का भारतीय क्षेत्र चला गया।

लद्दाख, जम्मू-कश्मीर का जिला है, जिसे वजारत भी कहते हैं। इसमें लद्दाख, कारगील और स्करद्, तीन तहसील है। लद्दाख तहसील में १५ पन्द्रह इलाके और ११० एक सौ दस गाँव हैं। इसकी जनसंख्या २५ पचीस हजार है और यह सबसे बड़ी तहसील है। जिले का क्षेत्रफल ४४ चौवालिस हजार वर्गमील है, जिसमें से २६ हजार वर्गमील लद्दाख तहसील का है और यह पूर्व में है।

चीन का जिस क्षेत्र पर दावा है, वह लद्दाख तहसील का पूर्वी भाग है। वहाँ दमचौक गाँव के अलावा बाकी का क्षेत्र निर्जन है। उसमें सोडे के मैदान, अकसाई चिन या सफेद रेगिस्तान, लिंग-जीतंग और चांग चेनमो घाटी का अधिकांश भाग है।

लद्दाख के दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक समानान्तर पर्वत श्रेणियाँ हैं। इनमें मुख्य हिमालय पर्वत श्रेणी, जस्कर पर्वतश्रेणी, लद्दाख पर्वत श्रेणी, मुस्तक पर्वत श्रेणी और कुएनलुन पर्वत श्रेणी हैं। सिन्धु घाटी यहाँ की मुख्य घाटी है। यह सारे लद्दाख में दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक फैली हुई है। इसमें अनेक छोटी-छोटी घाटियाँ हैं, जहाँ से सिन्धु नदी की सहायक नदियाँ निकलती हैं। इन सहायक नदियों में सस्कर, श्योक, नूबा और चांगचेनमो मुख्य हैं।

लद्दाख तहसील के पूर्वी भाग में कई झीलें हैं, जिनमें अनेक [illegible] नाले व झरने आकर मिलते हैं सारिघ जिलगनंग झील [illegible] अन्य झीलों का पानी खारा है। अमतोगर, स्पंगुर मुख्य झीलें हैं। पांगोंग झील सबसे बड़ी है, जो चालीस

मील लम्बी, तीन-चार मील चौड़ी है। इसका पानी बहुत खारा है।

अनसाई चिन और लिंगजीतंग बंजर क्षेत्र हैं। मैदानी इलाका ऊँचा-नीचा है और पहाड़ियाँ छोटी छोटी हैं। यहाँ पहले कभी बड़ी झील रही होगी। आजकल यहाँ दो झीलें हैं, जिनका क्षेत्रफल जुलाई में १६ सोलह और ६० साठ वर्गमील रहता है और अप्रैल-मई में बर्फ़ पिघलने के समय इनका क्षेत्रफल काफी बड़ा हुआ होता है। चांग चेनमो घाटी में शरद्ऋतु में आसपास के गाँवों से मवेशियों के झुण्ड के झुण्ड चरने आते हैं।

लद्दाख का मौसम अजीब है। दिन में बहुत गरमी और रात में अत्यधिक ठंड रहती है। हवा में नमी नहीं रहती और सब चीजें सूखी रहती हैं। वर्षा कभी-कदाक ही होती है, पर हिमपात अक्सर होता है। यह मौसम जानवरों के लिए अच्छा रहता है। १७ हजार फुट तक की ऊँचाई पर जंगली गधे, बारहसिंगे, याक, जंगली बकरे, भेड़ आदि और १६ हजार फुट तक की ऊँचाई पर पहाड़ी चूहे और खरगोश मिल जाते हैं।

लद्दाख में चम्पा, लद्दाखी, बाल्टी और गिलगित की दर्द जाति के लोग रहते हैं। इनमें बहुत कम मुसलमान हैं और शेष सब बौद्ध हैं। लगभग प्रत्येक गाँव में बौद्धमठ हैं। यहाँ बहुपति-प्रथा काफी प्रचलित रही है। लगभग सभी ग्रामीण व्यक्ति खेती करते हैं और खेती के औजार आदि भी स्वयं ही बनाते हैं। नर-नारी मिलकर गीत गाते-गाते काम करते हैं।

ये लोग जौ का रेशा और जौ की रोटी बनाकर मक्खन के साथ खाते हैं और दूध पीते हैं। यहाँ के लोग गिराम से बनी चंग (हल्की बीयर) भी बहुत मात्रा में पीते हैं।

पुरुष मोटे ऊनी चोगे पहनते हैं। सिर पर रूई या भेड़ की खाल का टोपा पहनते हैं, जिसमें गर्दन और कानों को ढकने वाले

पट्टी भी रहती है। वे नमदे के सजावटी जूते पहनते हैं, जिनके तले भेड़ की खाल के होते हैं। पुरुष भी गहने पहनते हैं। उनकी पेटी में अनेक चीजें, जैसे—चाकू, चकमक पत्थर, चाय और तम्बाकू का बटुआ, चमकदार लोहे का पाइप आदि लटकी रहती हैं।

औरतें ऊन की काली जैकेट और रंग-बिरंगे ऊनी लँहगे पहनती हैं। इस पर भेड़ की खाल पहनती हैं, जिसमें आगे की ओर बटन के स्थान पर लोहे या पीतल की सुँआ होता है। सर उनका हमेशा नगा रहता है। वे अपने-अपने बालों की छोटी-छोटी लटें बनाकर लटका लेती हैं। फीरोजी रंग के कपड़े की पट्टी को वे माथे पर बाँधकर माँग पर से ले जाकर पीछे की ओर कमर तक लटकाए रहती हैं।

पहले लद्दाख स्वतन्त्र राज्य था, जिसमें तिब्बत का काफी पश्चिमी भाग भी शामिल था। दसवीं शताब्दी के अन्त में राजवंश में किसी विभाजन के फलस्वरूप तिब्बती क्षेत्र इससे अलग हो गया। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में लद्दाख एक सुदृढ़ राज्य बन गया, पर १६६४ में यह मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

लिये। १८४६ में कश्मीर ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया और अंग्रेजों ने लद्दाख से स्पिति तथा लाहौल ले लिए।

लद्दाख के साथ तिब्बत और सिंकियांग की सीमा-रेखा परम्परा से मानी जाती है। इस रेखा तक भारतीय अधिकारियों का शासन रहा है और वहाँ कई बार सर्वेक्षण किए जा चुके हैं। अतः हमें उस सीमा का पूरा विवरण पता है और हम एक-एक स्थान पर उसे बता सकते हैं और उसे नक्शे पर भी अंकित कर सकते हैं।

यह सीमा जलविभाजक रेखा (वाटर शेड) पर है। यहाँ कराकोरम, कुनलुन आदि कई पर्वत श्रेणियाँ हैं पश्चिम से पूर्व की ओर यह सीमा-रेखा अघील पर्वत से और शक्सगाम दर्रे से होकर काराकोरम दर्रे तक जाती है। यहाँ से कुनलुन होकर जाती है। पर्वत के इस ओर करकाश नदी और उस ओर युरुंगकाश है। इस पर्वत से यह रेखा दक्षिण पश्चिम की ओर लानकदर्रे तक जाती है। इस दर्रे के इस ओर अमतोगर और सारिघ जिलगनंग झीलें हैं और उस ओर तिब्बत की झीलें हैं।

लानक दर्रे के दक्षिण में यह सीमा उस वाटरशेड से होकर जाती है, जिसके इस ओर चांगचेनमो और पुनेशंग घाटी है और उस ओर तिब्बत की दरारों में मिलने वाले झरने हैं। यहाँ से यह पांगोंग झील के पूर्वी भाग को काटती है। फिर यह दमचोक के पाँच मील दक्षिण-पूर्व में सिन्धु को काटती हुई उस वाटर शेड पर जाती है, जिसके इस ओर सतलज की सहायक नदियाँ हैं और उस ओर हैनले नदी है। यहाँ से यह पश्चिम में ग्या चोटी तक जाती है जहाँ लद्दाख, पंजाब और तिब्बत का मिलन है।

— डाक्टर के० गोपालाचारी

चीनी सैनिकों के आकस्मिक आक्रमण से वीर भारतीय जवान विचलित नहीं हुए। वीर प्रसविनी भारत-जननी के उन सपूतों में शिवा जी और महाराणा प्रताप का अभिमान जाग उठा। वे कुँवर सिंह की आन की तरह बलिदान के लिए मचल उठे। उनकी अचूक निशाने बाजी के शिकार हो आक्रमणकारी लुढ़कने लगे। उनका अद्भुत शौर्य देख आक्रमणकारी आश्चर्य चकित रह गये।

शत्रुओं की सेना की लहर पर लहर आ रही है, किन्तु भारतीय सेना की सामग्री वे दुश्मनों के हाथ में क्यों जाने देंगे! प्राण की बाजी लगा कर भारी मशीन गन लौटा लाने का प्रमाण है कि भारतीय जवान साहस के पुतले हैं और अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के प्रति उनके हृदय में सच्चा प्यार है।

—जिसकी मिट्टी की रचना यह देह है,
जीवन की लौ जिसकी प्यारी नेह है!
साँसों में बनकर बयार जो डोलता,
प्राणों में पल-छिन जो अमृत घोलता।
वही हमारी लज्जा या अभिमान है,
न्योछावर उसपर ये तन-मन प्राण हैं!
मूल्यवान सब से स्वदेश का मान है,
उसकी खातिर करना हर बलिदान है!
हमको सबसे प्यारा हिन्दुस्तान है।

—बालकृष्ण उपाध्याय

चीनी सैनिक जल्द से जल्द चुसूल के हवाई अड्डे पर अधिकार करना चाहते थे जिससे भारतीय सैनिकों को रसद आदि की सहायता न मिले और लद्दाख पर अधिकार करना आसान हो जाय, किंतु भारतीय वीरों ने अपने बलिदान और अपूर्व वीरता के कारण उनके बढ़ते क़दमों को रोक दिया।

उन्हें विश्वास है, कि वे शत्रुओं से अपना भारतीय क्षेत्र वापस रहेंगे जिस पर चीनी अजगर अधिकार जमाये बैठा है। अब भारतीय जवानों के पास मित्रराष्ट्रों से प्राप्त आधुनिक स्वचालित अस्त्र हैं जिन्हें प्रतिकूल जलवायु में भी वे अबाध गति से प्रयोग कर सकते हैं। वे दृढ़प्रतिज्ञ हैं, अंतिम विजय भारत की होगी।

—जनरल जे० एन० चौधरी ने २० नवम्बर को स्थल सेनाध्यक्ष का पदभार संभाल लिया

२१ नवम्बर, ६२ को चीनसरकार ने एकतरफा युद्ध-बंदी की घोषणा की: ७ नवम्बर १९५९ को भारत-चीन की जो सीमा-स्थिति थी वहाँ से चीनी सैनिक १ दिसम्बर, ६२ से २० किलोमीटर पीछे हट जायेंगे। चीन ने इस नयी चाल से दुनिया के देशों पर यह प्रभाव डालना चाहा कि चीन सैनिक शक्ति में भारत से शक्तिशाली प्रमाणित होते हुए भी शांतिपूर्ण समझौता द्वारा विवाद मिटाने के लिए इच्छुक है। किंतु सारे संसार में उसके खौफनाक इरादे प्रकट हो चुके हैं कि वह विस्तारवादी है और हिटलर की राह पर चल रहा है।

७ नवम्बर की सीमास्थिति का उद्देश्य है, लगभग एक सौ पचास मील लम्बे और एक सौ पचास मील चौड़े भारतीय भू-भाग पर चीन का अधिकार बना रहे।

१० दिसम्बर को भारत-चीन-संघर्ष को शांतिपूर्ण समझौता वार्त्ता द्वारा समाप्त कराने के लिए ६: राष्ट्रों का एक सम्मेलन कोलम्बो में हुआ जो १२ दिसम्बर तक चलता रहा। सम्मेलन के निर्णय के अनुसार प्रस्तावों से अवगत कराने लंका की प्रधान
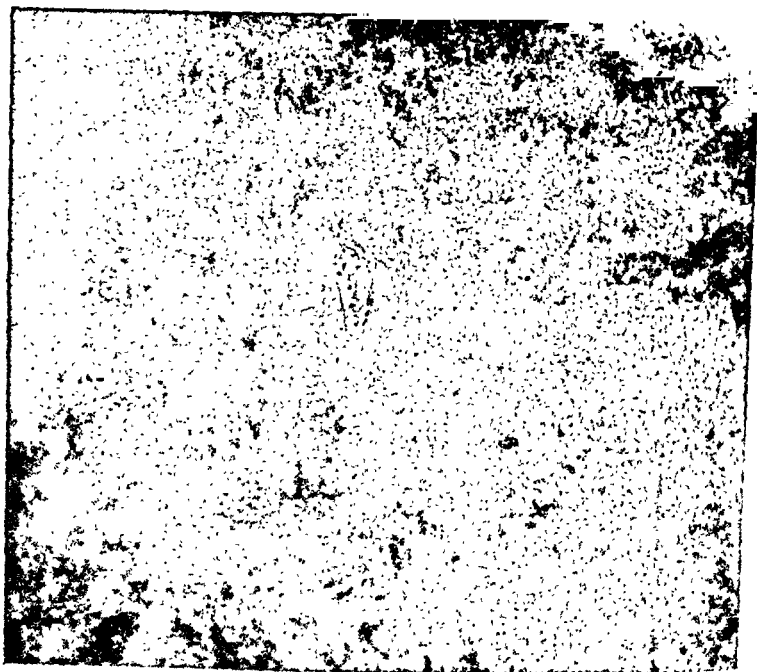
युद्ध विराम और युद्ध-बंदी लौटाने की चर्चा के साथ अपनी नेकनीयती का झूठा प्रचार करने वाले चीन के झूठ का पर्दाफाश एकबार और हुआ जब ब्रिगेडियर होशियारसिंह की हत्या की खबर मिली।

सेला दर्रे से जब युद्धबंदी के पश्चात् होशियारसिंह अपने कुछ जवान साथियों के साथ लौट रहे थे, २७ नवम्बर को देरांग जांग के पास चीनी सैनिकों ने उन्हें घेर लिया, और युद्धविराम के पश्चात् भी तीन तरफ से छुप कर, गोलियाँ चलाने लगे।

ब्रिगेडियर होशियारसिंह को पता नहीं था कि चीनी सैनिकों ने सेला और बोमडिला के बीच की सड़क काट दी है और बोमडिला चीनियों के अधिकार में है।

स्थिति का ज्ञान होते ही नर संहार रोकने के लिए, होशियारसिंह ने अपने साथियों को हथियार डाल देने का आदेश दिया। वे स्वयं हाथ उठा कर, आत्म समर्पण का उद्देश्य प्रकट करने लगे। उसी समय एक हत्यारे चीनी अफसर ने उन्हें अपनी गोली का निशाना बना दिया।

शहीद ब्रिगेडियर होशियारसिंह

ब्रिगेडियार होशियार सिंह अपनी वीरता और युद्ध संचालन कला में निपुण होने के कारण काफी नाम कमा चुके थे। द्वितीय महायुद्ध में भी उन्होंने भाग लिया था जिससे उनकी बहादुरी के लिए उन्हें 'इन्डियन आर्डर

आफ मेरिट' तथा 'इन्डियन डिस्टिंग्वश्ड सर्विस मेडल' मिले थे। फ्रांसीसी सरकार ने भी उन्हें वीरता के लिए पुरस्कार देकर सम्मानित किया था। सेला क्षेत्र में वे आक्रमणकारी चीनियों को रोकने के लिए नियुक्त थे।

झूठ का प्रचार करने वाले पेकिङ्ग रेडियो ने, उनकी हत्या पर परदा डालने के उद्देश्य से, घोषणा की, कि ब्रिगेडियर होशियार सिंह का शव एक खेत में पड़ा हुआ मिला और अंतिम संस्कार कर दिया गया।

—कभी न झुकने वाले मेरे, ओ अभिमानी प्राण!
सुनो, पुकार रही आजादी, माँग रही बलिदान!
उठो, उठा लें अस्त्र-शस्त्र हम चलें युद्ध की ओर
जहाँ मनुजता के हत्यारों का होता है शोर!

—उदयभान मिश्र

◉ पाकिस्तान-चीन गठबन्धन

२६ दिसम्बर '६२ को चीन और पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के बीच सीमा निर्धारण सम्बन्धी चीन और पाकिस्तान की संयुक्त विज्ञप्ति निकली। इससे स्पष्ट भला क्या होगा कि भारत के प्रति पाकिस्तान के इरादे बड़े खौफनाक हैं!

'काशगर'—चीन का सबसे बड़ा सैनिक केन्द्र है। वहाँ गिलगिट प्रदेश के मीनटाका दर्रे से ही पहुँचा जा सकता है। गिलगिट प्रदेश के हुंजा क्षेत्र 'मीनटाका दर्रे' से लद्दाख के 'कराकोरम दर्रे' तक पाकिस्तान जबरदस्ती अपना अधिकार मानता है जो गैर कानूनी है। चीन एक जमाने से इस क्षेत्र को हथियाने का अवसर ढूँढ़ रहा था और पाकिस्तानी राजनीतिज्ञों ने उसके सपने को साकार करने का

मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसके पूर्व अक्षयचिन और सिकियांग पर चीन अधिकार जमा ही चुका है।

१५ अगस्त १६४७ को भारत को स्वाधीनता मिली। स्वाधीनता और साम्प्रदायिक विभाजन के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत छोड़ा। उसके पूर्व जुलाई में ही गिलगिट और हुंजा प्रदेश अंग्रेजों ने कश्मीर के महाराजा को सौंप दिया जिनसे, भारत की सुरक्षा की दृष्टि से, अंग्रेजों ने अपने अधिकार में ले लिया था।

पाकिस्तानी नेताओं ने कबायली उपद्रवकारियों को उभार कर, कश्मीर पर आक्रमण करवा दिया। २६ अक्टूबर १६४७ को, जम्मू-कश्मीर के महाराजा ने भारत में अपनी रियासत मिलाने का निश्चय किया।

भारतीय सेना आक्रमणकारियों को खदेड़ती हुई आगे बढ़ती जा रही थी कि पहली जनवरी १६४६ को भारत ने युद्धविराम की घोषणा कर दी जिससे गिलगिट हुंजा आदि क्षेत्र आक्रमणकारियों के अधिकार में ही रह गया था।

भौगोलिक सुरक्षा की दृष्टि से पाकिस्तान और हिन्दुस्तान विशाल भारत के दो खण्ड हैं। किसी एक खण्ड पर कोई विदेशी आक्रमण होता है तो स्वतंत्रता की रक्षा के लिए दूसरे खण्ड को पूरी ताकत से शत्रुओं को मार भगाने के लिए आगे बढ़ना ही होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो अपने कर्त्तव्य से मुँह चुराने वाला अपने साथ ही विश्वासघात करता है।

भारत के शांतिप्रिय नेता पाकिस्तान से मित्रता चाहते हैं और भारतीय जनता पाकिस्तानी जनता को अपना भाई समझती है इसलिए पाकिस्तान को फलते फूलते देखने की आकांक्षा रखती है। किंतु पाकिस्तान के राजनीतिज्ञ मित्रता के बन्धन को तोड़ते रहने में ही प्रयत्नशील हैं। वे हिन्दुस्तान और 'पाकिस्तान को ...ओं

उपद्रव करा कर, पाकिस्तानी अखबारों द्वारा भारत के विरुद्ध प्रचार करवा कर, युद्ध के लिए उकसा रहे हैं।

पाकिस्तान का भारत के प्रति द्वेषभाव आपस का झगड़ा ही कहा जा सकता है! इतिहास गवाह है कि आपस की फूट और वैर ने विशाल भारत को किस प्रकार तबाही और बर्बादी के गड्ढे में ढकेला और विदेशी आक्रमणकारी उससे किस प्रकार लाभान्वित हुए। इतिहास की भूल फिर से दुहरायी न जाय—इस पर पाकिस्तान के कूटनीतिज्ञ—भारत के मित्रताप्रस्ताव को ठुकराने वाले—क्या ध्यान देंगे?

—न हम इस वक्त हिन्दू हैं, न मुस्लिम हैं, न ईसाई
अगर कुछ हैं, तो हैं इस देश, इस धरती के शैदाई
इसी को जिन्दगी देंगे, इसी से जिन्दगी पाई
लहू के रंग से लिक्खा हुआ इकरार हो जाओ!
वतन की आबरू खतरे में है, हुशियार हो जाओ!

—साहिर लुधियानवी

● पाकिस्तान ने भारत के खिलाफ पुनः जोर-शोर से प्रचार शुरू कर दिया है। इसका उद्देश्य अमेरिका और ब्रिटेन को यह विश्वास दिलाना है कि भारत की रक्षाशक्ति बढ़ने से पाकिस्तान को खतरा है। सारी दुनिया को मालूम है कि, भारत केवल चीनी हमले से अपनी उत्तरी सीमा की रक्षा की तैयारी कर रहा है। पाकिस्तान स्वयं कम्युनिस्टों का एशिया में सबसे बड़ा विरोधी होने का दम भरता था। इसलिए चीन के हमले के समय उसे हर तरह से भारत की मदद करनी चाहिए थी!

पाकिस्तान को, एशिया में साम्यवाद का बढ़ाव रोकने के लिए ...ो' (दक्षिण पूर्व एशिया) सन्धि और संगठनों से बहुत ...क सहायता मिली है। लेकिन वही पाकिस्तान आज

अमेरिका और ब्रिटेन को कम्युनिस्ट चीन के खिलाफ भारत की मदद करने से मना कर रहा है। पाकिस्तान यह शीर्षासन क्यों कर रहा है ? क्या वह अब फौजी-संधियों में अपना विश्वास खो बैठा है, या उसने अपनी विदेशनीति बदल दी है और साम्यवाद का समर्थक बन गया है ? दोनों बातें नहीं दिखाई देतीं। पाकिस्तान में आज भी सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था कायम है, और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भी वह पश्चिमी देशों के साथ है।

पाकिस्तान की, कम्युनिस्टों से सांठगांठ का पता, चीन-पाकिस्तान सीमा-समझौते से लगा। इस समझौते में सम्भवतः ऐसी गुप्त शर्तें भी हैं, जिनकी ठीक जानकारी पश्चिमी देशों को नहीं है। इस सन्धि के बाद पाकिस्तान ने भारत-चीन सीमा विवाद में चीन का पक्ष लिया। जब रूस ने चीन की आलोचना की तो पाकिस्तान ने रूस का भी विरोध किया। रूस और चीन के सैद्धांतिक विवाद में पाकिस्तान ने चीनी पक्ष का ही प्रचार किया। दूसरी ओर पाकिस्तान पश्चिमी देशों से भी मिला रहा। उसने 'सिएटो' और 'सेंटो' की बैठक कराची में बुलाने का प्रस्ताव किया, तथा पश्चिमी राष्ट्रों को यह समझाना चाहा कि उसने केवल मतलब निकालने के लिए चीन से कुछ मेलजोल बढ़ाया, और यह उसकी स्थायी नीति नहीं है।

पाकिस्तान की सारी नीति भारत से द्वेष पर आधारित है, इसका प्रमाण यह है कि उसने गोआ के मामले में पुर्तगाल का साथ दिया था और उपद्रवी नेता फिजो का समर्थन किया तथा भारत और अन्य तटस्थ देशों के बीच फूट डालने की कोशिश की। पाकिस्तानी अखबार और नेता यह कहते नहीं थकते कि, केवल भारत ही उनका दुश्मन है। पाकिस्तान की नीति यह है कि भारत के शत्रु पाकिस्तान के मित्र हैं।

.पाकिस्तानी नेताओं की भारत से शत्रुता और पाकिस्तानी

अखबारों में खुलेआम भारत से युद्ध का प्रचार होने पर भी पश्चिमी देशों से पाकिस्तान को भारी फ़ौजी सहायता मिलती रही है। श्री डीन रस्क के अनुसार पाकिस्तान को ६०० अरब डालर की सहायता मिल चुकी है। पाकिस्तानी नेताओं ने जब खुलेआम भारत से अपनी दुश्मनी की घोषणा कर दी है, तब तो भारत को यह सवाल उठाना चाहिए कि पाकिस्तान की पश्चिमी देशों की विशाल सैनिक सहायता का प्रयोग भारत के विरुद्ध होगा। आखिर पाकिस्तान का उद्देश्य क्या है? चीन से उसकी सांठ-गांठ, नागा-विद्रोहियों को चोरी-छिपे हथियार की मदद तथा भारत के खिलाफ उसकी हरकतें—ये सब उसकी नीयत को जाहिर करती है और भारत के पास पश्चिमी देशों से यह कहने का पूरा आधार है कि पाकिस्तान को सहायता देने के पहले, वे उससे वचन लें कि वह भारत से युद्ध न करेगा, क्योंकि पाकिस्तान पश्चिमी फौजी मदद का प्रयोग चीन के साथ मिलकर भारत के खिलाफ कर सकता है। दूसरी ओर भारत ने ऐसी बात कभी सोची तक नहीं, बल्कि हमने पाकिस्तान के संदेह को दूर करने की ही हमेशा कोशिश की। भारत अपने पड़ोसियों से दोस्ती रखना चाहता है, इसका इससे बड़ा और क्या सबूत है कि गंभीर संकट के समय भी भारत पाकिस्तान से बातचीत करने को राजी हो गया, जब कि कश्मीर के एक भाग पर पाकिस्तान का अवैध अधिकार है। अपनी शान्तिप्रियता के कारण ही भारत युद्धविराम रेखा में आवश्यकफेर बदल करने को तथा पाकिस्तानी कब्जे की अपनी ३०,००० वर्गमील भूमि छोड़ने को तैयार हो गया। जब पाकिस्तान की हठधर्मी के कारण दोनों ओर के मंत्रियों की बातचीत टूट गई, तब भी भारत ने शान्ति से ही अपने झगड़े निपटाने का निश्चय रखा और पाकिस्तान से अनाक्रमण सन्धि का प्रस्ताव किया।

सबसे पहले १९४९ में प्रधान मन्त्री नेहरू ने पाकिस्तान से

अनाक्रमण सन्धि करने की इच्छा प्रगट की। अनाक्रमण सन्धि के मसौदे में यह बात कही गयी है कि वर्तमान या भविष्य में किसी भी विवाद में दोनों देश कभी भी युद्ध का रास्ता न अपनाएँगे और और बातचीत तथा अन्य शांतिपूर्ण उपायों से ही उनका निपटारा करने की कोशिश करेंगे। मसौदे में किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से भी मध्यस्थता कराने की व्यवस्था है। पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इसके बावजूद १९५१ और १९५६ में भारत ने फिर से यही प्रस्ताव किया। अब भारत ने एक बार फिर युद्ध न करने की सन्धि का प्रस्ताव किया है, इससे दोनों देशों के बीच युद्धविराम रेखा पर तैनात सैनिक हटाए जा सकते हैं, साथ ही पाकिस्तान के अपने दावे या पक्ष की पैरवी पर भी कोई रोक नहीं लगती। अनाक्रमण सन्धि से दोनों देश इससे बँध जाते कि वे सीमा में परिवर्तन के लिए बल-प्रयोग न करेंगे। यह खेद की बात है कि पाकिस्तान ने भारत के सहयोग, सद्भाव और दोस्ती के प्रस्ताव को फिर ठुकरा दिया है। —श्री सैयद अली सज्जाद

—जिसे असह्य हो रहा हमारा रहना बन स्वाधीन!
मूर्ख, आततायी, बर्बर, पशु हिंसावादी चीन!
आओ उसको मजा चखा दें, तोड़ें उसके दाँत!
फोड़ निकालें आँखें उसकी, और खींच लें आँत!
नहीं आग से डरने वाले, व्याकुल मेरे प्राण!
सुनो, पुकार रही मानवता माँग रही है प्राण!

—उदयभान मिश्र

●मोर्चे पर भारतीय सैनिकों की अद्भुत वीरता

—नस-नस में बिजली दौड़ेगी सुनकर इनका गौरव गान
गर्म खून खौलेगा, फड़केगी फिर शूरों की सन्तान

"मैं एक साधारण सैनिक हूँ और राजनीति का 'क' और 'ख' भी नहीं जानता। किन्तु इतना कह सकता हूँ कि चीनियों का युद्ध विराम तथा उनके पीछे हटने का कारण उन पर भारतीय जवानों के साहस का आतंक है।......थोड़ी संख्या में रहने पर चीनी उसी तरह भाग खड़े होते थे, जिस प्रकार भेड़िये को देखकर भेड़ें। वे उसी समय आगे बढ़ते थे, जब उनकी संख्या हजारों में पहुँच जाती थी।" ये शब्द हैं राजपूत रेजीमेंट कम्पनी के हवलदार मेजर सौदागर सिंह के जिनके पास नेफा मोर्चे से प्राप्त एक तोहफा है: चीनी स्वचालित राइफल और जिसे वे प्राण की बाजी लगाकर एक चीनी सैनिक से छीन लाये।

२० अक्टूबर की सुबह नेफा में जब लगभग २५० चीनियों ने हवलदार मेजर सौदागर सिंह की नामकाचू नदी की चौकी पर हमला किया तो उनके दल की तरफ बढ़ते और मरते जा रहे चीनी सैनिकों में से एक उस चट्टान से केवल पाँच कदम दूर रहा जिसके पीछे सौदागर सिंह अपने कारतूस समाप्त कर चुके थे। गोली की तेजी से आगे बढ़ कर सौदागरसिंह ने संगीन भोंक उस चीनी को मार गिराया और उसकी राइफल छीन ली। उसके बाद उसी स्वचालित राइफल से उन्होंने ६-७ चीनियों को मार डाला।

हवलदार मेजर सौदागर सिंह ने बताया—"चौकियों के दो सौ जवानों पर दो हजार चीनी सैनिक टूट पड़ते थे। हमें निशाना नहीं लगाना पड़ता था, झुंड के झुंड चीनियों पर हमारी एक भी गोली व्यर्थ नहीं गई। हमलोग मारते-मारते या तो मर जाते या अपने सेनापति के आदेश से दूसरा मोर्चा सुदृढ़ करने पीछे हट आते थे।

चीनी सैनिकों की स्थिति इतनी दयनीय थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि उन्हें समुचित भोजन नहीं मिलता। वायुयान से गिरायी जानेवाली हमारी भोजन की सामग्री कभी-कभी बहक कर जब किसी

पेड़ या चट्टान पर अटक जाती थी, तब चीनी सैनिक उसे लेने के लिए इस प्रकार टूट पड़ते थे, जिस प्रकार जूठे पत्तों पर कुत्ते। ऐसी स्थिति में भारतीय जवान जम कर उनका शिकार करते थे।

चीनियों से छीनी हुई राइफल की एक गोली दिखाते हुए हवलदार मेजर सौदागरसिंह ने कहा कि उनकी गोलियाँ हमारी गोलियों से बहुत हल्की हैं। हमारी ३०३ राइफल की गोली उन पर कहर बरपा कर देती थी। हमारे पास न तो खाने की कमी थी और न वर्दी की। हमारे जवानों ने जिस प्रकार ऊँचे पहाड़ों पर सामान गिरा कर सहायता की, वह युद्ध के इतिहास की अपूर्व घटना है।

जो कायर होता है, धोखे का सहारा लेने की आवश्यकता भी उसे ही पड़ती है। चीनियों की धोखा देने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि कभी-कभी तो उनका विश्वासघात देख कर दंग रह जाना पड़ता था। चाहे जो कुछ हुआ, भारतीय जवानों ने देख लिया कि चीनी कितने पानी में हैं और उनकी वीरता एवं साहस का स्तर क्या है।

—गार्ड्स रेजीमेण्ट के नवयुवक लेफ्टिनेण्ट जितेन्द्रसिंह चौधरी ने मोर्चे पर जाने के पूर्व कहा था, वे अपनी मातृभूमि के सम्मान की रक्षा करेंगे और चीनी हमलावरों को सबक सिखायेंगे। या तो उन्हें वीरता के लिए पुरस्कार मिलेगा या वे मोर्चे पर वीरगति पायेंगे। उन्होंने मातृभूमि के चरणों पर अपने प्राण न्योछावर कर दिये।

वे सड़क से रुकावट दूर करने वाली कम्पनी के कमान में थे। अद्भुत सूझ और वीरता का परिचय देते हुए लेफ्टिनेण्ट चौधरी ने चीनियों की गोलाबारी की परवाह न कर अपना काम पूरा किया। उन्होंने वीरगति प्राप्त करने पूर्व अकेले ही पचास चीनी सैनिकों को मौत के घाट उतारा। उनकी उम्र २३ वर्ष की थी।

—हों कभी ठंडे न तेरी तोप के जलते दहाने
ये रुकें क्षण-भर न तेरे हाथ नंगे खड्ग ताने
एक क्षण को भी न विचलित हों मरण के ये निशाने
शान्ति आएगी स्वयं तेरी विजय का गान ले।

—अंचल
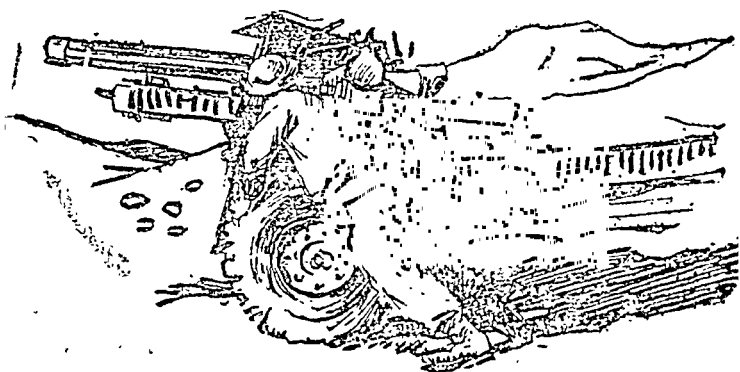
—बाईस वर्षीय बाजीराम थापा ने बताया कि "मुझे अन्य पचास जवानों के साथ वालोंग के पश्चिम में चीनी हमलावरों के मुकाबले के लिए भेजा गया। उस दल की अग्रिम टुकड़ी लगभग एक मील आगे थी।

दो अन्य सैनिकों के साथ मैं बहुत जल्दी में खोदी गई खाई में मोर्चा लगा कर बैठ गया। अभी दोपहर होने में कुछ देर थी। क्रुद्ध मधुमक्खियों की तरह चीनी हमलावर दौड़ते हुए हम पर टूट पड़े। इस मुठभेड़ में हमारे दस जवान मारे गये। दुश्मन के सिपाही हम पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसा रहे थे, जिसमें मेरे दोनों साथी मारे गये और मैं अकेला रह गया। सैकड़ों गोलियाँ सनसनाती हुई मेरे चारों ओर से गुजर रही थीं। मैं घबड़ाया नहीं। मैंने गोली चलाई

और अपने सामने के पाँच चीनी सैनिकों को मार गिराया। फिर अपनी बायीं ओर दो हथगोले फेंके, जिससे कम से कम दस और हमलावर मारे गये। चीनियों के कतार के बीच की एक खाली जगह से निकल भागने के लिए मैं बहुत तेजी से अपने खन्दक से निकल कर आगे बढ़ा। पर गोली लगने के कारण मैं घायल हो गया और गिर गया जमीन पर। मैं इस प्रकार चुपचाप पड़ा रहा, मानो मैं मर गया हूँ।

मेरे घावों से अत्यधिक खून बह रहा था। चीनी सैनिक मेरे पास से गुजर रहे थे। वे गुजरते हुए मुझे मरा समझ कर ठोकर भी मारते जाते थे। उनके निकल जाने के बाद मैं पेट के बल खिसक कर घनी झाड़ियों में छिप गया।"

जंगल में कई मील चलने के बाद बाजीराम थापा ने नदी पार की और उस समय वे चीनियों के हाथों में पड़ने से बाल बाल बचे। किसी तरह वे चीनियों की निगाह से बचे और निकट की भारतीय चौकी पर पहुँच गये।

—"गोवा में तो देखते ही देखते हमने क्षणभर में गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर फेंक दिया। गोवा-मुक्ति के बाद हमें पुनः वालोंग भेज दिया गया। तीन वर्ष पूरे होने पर मेरी बदली मथुरा हो रही थी, सामान तक बाँधा जा चुका था कि चीनियों ने हमला शुरू कर दिया और हमें हमले का मुकाबला करने का आदेश दिया गया।" ये शब्द हैं सेकेण्ड राजपूत रेजीमेंट के सैनिक फलजीत सिंह के। उन्होंने बतलाया—"लेकिन हमें स्वप्न में भी आशा न थी कि चीन इस प्रकार अचानक धोखे से हमला करेगा। राइफ़लें एवं सीमित कारतूस ही हमारे पास थे। हमने उनकी चुनौती स्वीकार करके गोली का जवाब गोली से दिया। हमारे तीन सौ सैनिकों ने एक घंटे में ही दुश्मनों को पीछे भगा दिया। कुछ ही समय में हमने
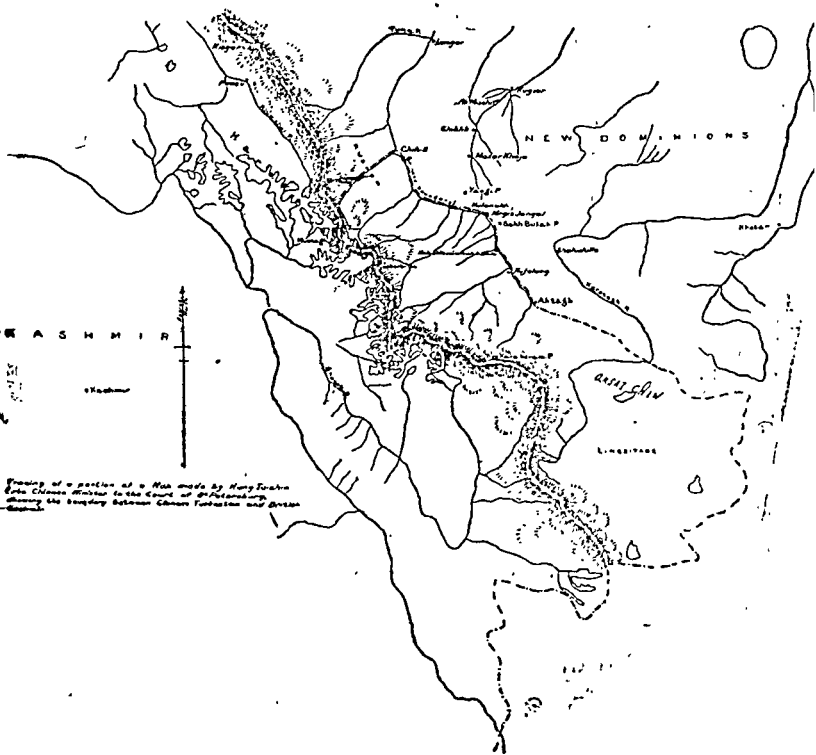
काशगर में ब्रिटिश भारतीय कौंसुल को १८९३ में एक सीनियर चीनी कर्मचारी श्री हुङ्ग ता-चिन द्वारा सरकारी तौर पर दिए गए एक नक्शे की अनुकृति। इसमें अक्षयचिन और लिंग्जी तांग को स्पष्टरूप से भारत में दिखाया गया है।

खाइयाँ खोदकर मोर्चे लगा लिये। जब हमने लगभग एक हजार चीनियों को पीछे धकेल दिया तो चीनियों ने रात्रि के समय पुनः भारी संख्या में दो तरफ से हम पर आक्रमण किया। हमारी दायीं ओर ही कुमायूँ गढ़वाल रेजीमेंट थी। हम दृढ़ता से मोर्चा लेते रहे। हमारी सबसे आगे की चौकी पर हमारे साथ २८ अन्य जवान थे। हम २९ जवानों ने चीनियों को चौकी के पास तक नहीं फटकने दिया। हमारे देखते ही देखते सैकड़ों चीनी हमारी गोलियों से ढेर हो गये। अन्त में चीनियों ने हमारी चौकी पर भारी मोर्टारों तथा छोटी तोपों से गोले बरसाये। हमारे पास छोटी तोपें न थीं अतः हमें विवश होकर पीछे हटना पड़ा।

"हमारे निकट ही कुमायूँ रेजीमेंट के जवान मोर्चे पर डटे थे। सामने से चीनी गोलाबारी कर रहे थे। कुमायूँ रेजीमेंट का नायक चीनियों पर बराबर हथगोला फेंकता रहा। जब उसके पास केवल चार हथगोले रह गये तो उसने अपने सेक्शन के जवानों को बच निकलने का आदेश दिया। जिस समय सेक्शन के सभी जवान वहाँ से निकल गये तो उसने खड़े होकर हाथ ऊँचे कर दिये। चीनियों ने समझा कि हथगोले समाप्त हो गये हैं। लगभग २० चीनी उसे बन्दी बनाने के लिए ज्योंही बढ़े कि उसने तपाक से हथगोला फेंका। देखते ही देखते १७ चीनियों के प्राण पखेरू उड़ गये और वह स्वयं भी शहीद हो गया।

"तंगधार के पास हम भटक गये। हम नौ दिन तक भूखे-प्यासे भटकते रहे। बर्फ चाटकर हमें प्यास बुझानी पड़ती थी किन्तु मातृ-भूमि की रक्षा की चिन्ता में हम इन कष्टों को वरदान ही समझते थे। एक दिन बड़ी मजेदार बात हुई। हमने एक ऊँची पहाड़ी पर दस-पन्द्रह सैनिकों को बैठे देखा। हमने उन्हें अपना जवान समझा। हम ज्योंही उनके पास पहुँचे कि वे हमें देखकर सिर पर पैर रखकर

भाग खड़े हुए। भागते-भागते ही हमारे सामने उनमें से दो चीनी एक गहरी खाईं में गिर गये तथा नुकीले पत्थरों से टकराकर यमलोक सिधार गये।"

—लेफ्टिनेण्ट कर्नल पठानिया के शौर्य की कहानी भी भुलाई जा सकती। स्वतन्त्रता की रक्षा के आवेश में वे दुश्मनों का शिकार करते समय कई बार खाई से निकल निकल दुश्मनों के झुण्ड के सामने अकेला आ गये। उनपर दुश्मनों ने गोलियों की बौछार कर दी। एक गोली उनके पुठे पर पिस्तौल के खोल पर लगी; कुछ उनके जैकेट को छेदती हुई निकल गईं। दो गोलियों ने उनकी पैंट पर छेद बना दिये। एक गोली उनके सिर को खरोंचती हुई निकल गई, फिर भी वे बच निकले।

—सिपाही नैनसिंह जब चीनियों का मुकाबला कर रहे थे। मोर्टार से गोले का एक टुकड़ा छिटक कर उनके पेट में लगा। उनकी अँतड़ियाँ बाहर निकल आईं, फिर भी वे अविचलित अपने मोर्चे पर डटे रहे। उनके कुछ साथी मरहम पट्टी के लिए, वापस ले जाना चाहते थे, किन्तु उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। पेट पर पट्टी बँधवा कर, उन्होंने मोर्चा सँभाल लिया। अनेक चीनियों को मौत के मुँह में झोंकने के बाद, दूसरी जगह मोर्चा लेने के लिए वे हटे तो पेट की पट्टी खुल गई और अँतड़ियाँ फिर बाहर निकल आईं। उन्होंने प्राणों का मोह न किया और मरते-मरते भी अनेक दुश्मनों को मौत की नींद सुला दिया।

—चिकित्सा अधिकारी डाक्टर सुब्बा को जब पीछे हटने का आदेश मिला उन्होंने अपने घायल जवानों को छोड़ कर, पीछे हटने से इन्कार कर दिया। वे अपने स्थान पर जमे रहे।

—२३ वर्षीय सिपाही रतनसिंह का साहस भी किसी वीर से कम नहीं कहा जा सकता। आक्रमणकारियों की एक गोली उसकी

जाँघ में घुस गई, किन्तु वह पहाड़ी पर चढ़ता ही गया और शत्रुओं को मौत के घाट उतारता रहा। अंत में वह अपने ठिकाने पर पहुँच गया।

—डोगरा सैनिक गणेशराम शत्रुओं की गोलियों की परवाह न कर, नदी के बीच बर्फीले पानी में खड़ा रहा और अपने साथियों को नदी पार करने में सहायता पहुँचाता रहा।

—सूबेदार गोविन्दसिंह १४ नवम्बर की सुबह में हल्की मशीनगन लेकर घुटने के बल चलते हुए शत्रु के ठिकाने की ओर बढ़े। जब वे केवल ४० गज दूर रह गये, तब पेड़ पर छिपकर बैठे हुए चीनी शत्रु ने उनपर गोलियाँ चलायीं। उनके दस्ते के सैनिकों ने उस दुश्मन को मार गिराया। जब वे ३० गज दूर रह गये, तब शत्रुओं ने उनपर गोलियों की बौछार कर दी। वे घायल हो गये फिर भी बढ़ते चले गये। जब निर्दिष्ट स्थान केवल पन्द्रह गज दूर रह गया, शत्रुओं की गोली वर्षा के कारण आगे बढ़ना कठिन हो गया। सूबेदार गोविन्दसिंह ने वहीं मशीनगन फिट की और शत्रुओं को धड़ाधड़ यमलोक पहुँचाने लगे। अन्त में उनके दस्ते के सैनिकों ने देखा कि उन्होंने मातृभूमि पर प्राण न्याछावर कर दिये, किन्तु उनकी बगल में वही मशीनगन है।

—लद्दाख स्काउट्स के हवलदार सरूपसिंह ने भी मातृभूमि की बलिवेदी पर स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति दी। वे मर कर भी अमर हो गये। २० अक्टूबर को, सुबह में उस सीमा-चौकी पर, जहाँ केवल एक प्लाटून थी, भारी संख्या में चीनियों ने आक्रमण किया। सरूप सिंह अपने अन्य दो साथियों के साथ अपनी खाइयों से दुश्मन पर गोलियाँ बरसाने लगे। तभी उनकी खाइयों के पास एक गोला गिरा जिससे उनके दोनों साथी शहीद हो गये। सरूपसिंह भी बुरी तरह घायल हुए। अपने जख्मों की परवाह नहीं करते हुए सरूपसिंह ने चीनियों को आगे बढ़ने से रोक रखा। सात

घंटे तक लगातार दुश्मनों के छक्के छुड़ाने के पश्चात् वह बेहोश हो गये। गोलियों से उनका शरीर छलनी हो गया था। भारत के इस वीर सैनिक ने पाँच सौ राउण्ड गोलियाँ चलाई थी। २१ अक्टूबर को उनकी देह से प्राण का नाता टूटा, किन्तु अन्तिम समय भी उनके होठों पर यही शब्द थे, 'मैं दुश्मनों से अभी लड़ सकता हूँ।'

—नायक रविलाल थापा लद्दाख के पांगोंग झील क्षेत्र की एक चौकी के कमाण्डर थे। वह चौकी झील के किनारे थी और वहाँ से उस पार के लिए नौकाएँ आया-जाया करती थीं। इस चौकी का पार की अनेक भारतीय चौकियों से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध था। २१ अक्तूबर को प्रातःकाल चीनियों ने उस चौकी पर आक्रमण किया। प्रथम गोले ने ही वायरलेससेट को नष्ट कर दिया और चौकी का सम्बन्ध मुख्य सैनिक अड्डे से टूट गया। नायक थापा ने चौकी से अड्डे तक एक नौका में जाने और वहाँ से स्थिति का समाचार लाने का निश्चय किया। ७ बजे प्रातःकाल वे एक नौका में सवार हुए। जब वे चौकी से एक हजार गज की दूरी पर थे तब दुश्मनों की नजर उन पर पड़ी। तीन तरफ से उन पर गोलियों की बौछार होने लगी। नायक थापा ने अद्भुत धैर्य का परिचय दिया। नाव बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गयी फिर भी थापा ने अपना काम पूरा किया। उसी दिन सन्ध्या समय एक भारतीय चौकी खतरे में पड़ गई और उसे खाली कराना आवश्यक हो गया। थापा ने यह भार अपने ऊपर लिया। वे दो नौकाओं पर अपने सैनिकों को निकाल कर जब ला रहे थे, चीनियो ने गोलाबारी शुरू कर दी। एक नाव क्षतिग्रस्त होकर डूब गई। थापा निराश न हुए और पानी में कूद कर, तैर-तैर कर, तीन डूबते हुए सैनिकों की प्राण-रक्षा की।

—लेफ्टनेण्ट विक्रमसिंह ने नेफा के पश्चिम किनारे के एक मोर्चे से दुश्मनों के दाँत खट्टे किये। उन्होंने एक संदेश भेजा था—'मैं आधे घन्टे से अधिक इस स्थान की रक्षा नहीं कर सकूँगा, किन्तु

वापस नहीं आऊँगा।' ब्रिगेडियर नवीनचंद रौली की वीरता भला कैसे भुलाई जा सकती है। लद्दाख के चुशूल के निकट एक जवान ब्रह्मदेवसिंह लड़ते-लड़ते शहीद हो गया।

शत्रुओं से मुकाबला के लिए जाते हुए भारतीय सैनिक

—रेजांगला की लड़ाई युद्ध के इतिहास में अमर रहेगी। भारी संख्या में चीनियों का सफाया करने के पश्चात् भी जब झुण्ड के झुण्ड चीनी आते ही रहे तो अहीरों की कम्पनी के दस बारह क्रुद्ध अहीर खाई से बाहर निकल पड़े। एक अहीर ने तो एक चीनी को उठा

लिया और एक चट्टान पर दे मारा। वे आहत हुए, किन्तु अपने अड्डे पर लौट आये। एक नायक बुरी तरह आहत हुआ। उसे मरा समझ कर, चीनियों ने किरासनतेल उड़ेल कर आग लगा दी। आग की गर्मी से नायक को होश हुआ। उसने अपना जैकेट निकाल कर फेंक दिया और चार मील तक लुढ़कता हुआ चला आया। बाद में, ६ मील पैदल चल कर, वह भारतीय अड्डे पर पहुँच गया।

—'नेफा' में एक अगली चौकी पर कुमायूँ रेजीमेंट के नायक बहादुरसिंह बड़ी बहादुरी से दुश्मनों को अंतिम साँस तक मौत के घाट उतारते रहे। नायक अभयसिंह की वीरता से दुश्मन आश्चर्य चकित रह गये। सेला के निकट जब वे दुर्गम पहाड़ियों में भूले प्यासे भटक रहे थे, उनका सामना एक चीनी दल से हो गया। बहुसंख्यक चीनियों की परवाह न करते हुए, वे अकेले उन पर गोलियाँ बरसाने लगे। कई दुश्मनों को यमलोक पहुँचाकर वे शहीद हो गये।

—एक घायल सिपाही को चिकित्सा के लिए लाने के प्रयत्न में, गोलियों की बौछार के बीच, सिपाही एफ० जोसेफ शहीद हो गये। जाट रेजीमेंट के शहीद मेजर दत्तात्रय नारायण पाठक ने भी अपने लहू से साहस और बलिदान की कहानी लिख दी। 'लद्दाख' की एक चौकी पर शहीद नायक मुंशीराम और लाभ-सिंह ने भी अपने साहस का परिचय दिया। पंजाब रेजीमेंट के मेजर महेन्द्र चौधरी ने नेफा में लड़ते-लड़ते वीर गति पायी।

—कुमायूँ रेजीमेंट के रायफल मैन बचीसिंह को एक अन्य चौकी के लिए आवश्यक सूचना के साथ भेजा गया। मैकमहोन रेखा के पास उनकी चौकी पर चीनियों ने आक्रमण कर दिया था। बचीसिंह जब सूचना पहुँचा कर लौटे तो उनके साथी प्रतिरक्षात्मक कार्रवाई के लिए उस चौकी को छोड़ चुके थे।

अंधेरे में, उन्हें कुछ सैनिकों के होने का आभास मिला। वे

चीनी थे। 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई, का नारा लगाते हुए चीनियों ने बचीसिंह को पकड़ लिया। बचीसिंह झटका देकर भाग निकले। चीनियों ने गोली मारी। गोली बचीसिंह की बाँह में घुसी, किंतु वे पत्थरों के ढोकों के सहारे छिप गये और पेट के बल रेंगते हुए, चीनियों के चंगुल से बच निकले।

—वीर सिपाही खेमा राम के पास, शत्रुओं से लगातार लड़ते-लड़ते, गोलियाँ न रहीं। वे शत्रुओं से घिर गये। रक्षा का कोई अन्य उपाय न देख, वे चालीस फीट नीचे गहरे नाले में कूद पड़े। घुटने की हड्डी टूट गई। बर्फीले पानी में वे बहते गये। अब वे स्वस्थ हैं।

—सूबेदार जोगिन्दर सिंह ने अपनी वीरता से दुश्मनों के होश ठिकाने लगा दिये। नेफा के एक मोर्चे पर वे शहीद हो गये।

सूबेदार जोगिन्दर सिंह

२३ अक्टूबर को चीनियों के एक दल ने उनकी चौकी पर आक्रमण किया। सूबेदार जोगिन्दरसिंह ने अपने साथियों की सहायता से दुश्मनों का सफाया कर दिया। दूसरा दल पहुँचा; उसका भी वही हाल हुआ, किन्तु सूबेदार जोगिन्दरसिंह बुरी तरह घायल हो गये। उनके साथियों ने वहाँ से उन्हें हटाना चाहा, किन्तु शत्रुओं को आगे नहीं बढ़ने देने के दृढ़ संकल्प के कारण वे अडिग रहे। रात भर लड़ाई चलती रही।

'मेरी जान की परवाह मत करो, उससे अधिक कीमती मोर्चा की रक्षा करना है, जाओ अपना फर्ज पूरा करो...."

—ऐसे अगणित वीर भारतीय सेना में हैं जिन्होंने अपनी अद्भुत सूझबूझ और अपूर्व वीरता से दुश्मनों को आश्चर्यचकित कर दिया। ऐसे वीरों में एक हैं मेजर धनसिंह थापा जो भारतीय गोरखा हैं। वे चुसूल में उच्च-शिखर पर अपनी एक चौकी की रक्षा के लिए कुछ गोरखाली सैनिकों के साथ तैनात थे। २० अक्टूबर को सुबह होते ही चीनियों ने उनकी चौकी पर आक्रमण किया किन्तु वीर गोरखा सैनिकों की बहादुरी के सामने वे टिक न सके। दुबारा चीनियों का गिरोह पहुँचा और उसे भी बहादुर गोरखाली

मेजर धनसिंह थापा

जवानों ने भगा दिया। तीसरी बार के आक्रमण में भी मुट्ठी भर गोरखालियों से शत्रुओं ने मुँहकी खायी। चौथी बार क्रुद्ध मधुमक्खियों के झुण्ड की तरह, चीनी आये। इस बार टैंक, हथियारबन्द गाड़ियाँ भी दुश्मनों के साथ थीं। मेजर धनसिंह थापा खाई से बाहर निकल आये। उनकी मशीनगन चीनियों को चींटी की तरह मार रही थी, अचानक उसमें कुछ गड़बड़ी पैदा हो गई। वे सँभलें सँभलें तब तक चीनी उन पर टूट पड़े। अनुमान लगाया गया कि थापा शहीद हो गये। उनके परिवार वालों ने उनका श्राद्ध-कर्म समाप्त कर दिया। किन्तु एक दिन मेजर धनसिंह थापा की विधवा माँ द्रौपदी देवी, बहन

श्रीमती शकुन्तला देवी और पत्नी श्रीमती शुक्ला थापा की आँखों में हर्ष के आँसू छलक पड़े जब वे उनके सामने उपस्थित हुए। चीनियों ने उन्हें बन्दी बना लिया था और युद्धबन्दियों की रिहाई के पश्चात् ये ११ मई, ६३ को देहरादून पहुँच गये। गोरखा-नियम के अनुसार अपनी पत्नी से श्री थापा को पुनः विवाह करना पड़ा।

—भारत के वीर जवानों ने मौत को भी हराया! ऐसे जवानों में एक हैं **दोरजे कालगंज**। लद्दाख स्काउट के बहादुर जवान लांस नायक दोरजे कालजंग की अद्भुत कहानी अब विस्तार से मालूम हो गई है। यह बहादुर जवान ८ महीने पहले लद्दाख में चीनी ठिकानों के पीछे 'खो' गया था। अब १० जुलाई, ६३ को उसे लेह के सैनिक अस्पताल में भरती किया गया। उसके पहुँचते ही उसे सीधे अपने गाँव भेजा गया। उसका गाँव लेह के ही निकट है। गाँव पहुँच कर जब उसने अपनी झोंपड़ी का द्वार खोला, तब वह अपनी उम्र ४२ वर्ष, से अधिक बूढ़ा और थका लग रहा था।

अन्दर एक वृद्धा और एक युवक ने उसे आते देखा तो उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास ही न हो पाया। लेकिन कुछ ही क्षण बाद वह छोटी सी झोंपड़ी खुशी की चीखों से भर गई। वह वृद्धा उस लांस नायक की माँ थी और वह युवक उसका भाई। केवल एक सप्ताह पहले उसके परिवार वालों ने उसके अन्तिम संस्कार कर दिये थे। और उसकी विधवा (!) पत्नी कुछ बौद्ध धार्मिक संस्कार करने अपने मायके चली गई थी, ताकि उसके मृत (!) पति की आत्मा को शान्ति मिले। दोरजे के घर के लोगों ने तत्काल उसकी पत्नी को मायके से बुलाने के लिए आदमी भेजा। पत्नी के आते ही फिर घर में खुशी की एक और लहर आ गई और सारे गाँव में खुशियाँ

था, उस समय जम्मू कश्मीर मिलिशिया (अब लद्दाख-स्काउट) के लांस नायक दोरजे कालजंग अपने गैर-कमीशन अफसर हवलदार पूरण सिंह और अन्य जवानों के साथ दौलतबेग ओल्दी के निकट एक अकेली अग्रिम चौकी पर नियुक्त था। चीनी सैनिक अपनी विशाल संख्या के कारण काफी हानि उठाने के बावजूद भी, भारतीय चौकियों पर आ गये। केवल एक चौकी छूट गई। शायद वे उस ओर ध्यान देने से चूक गये और वह चौकी थी-दोरजे वाली।

चीनी हमले के दो दिन बाद तक दोरजे और उसके पाँच साथी अपनी उस एकान्त अग्रिम चौकी पर चुपचाप रहे। फिर उन्होंने वह चौकी समाप्त कर सदर मुकाम दौलतबेग ओल्दी जाने का निर्णय किया। दोरजे दो इंची मोर्टार लेकर चला। वह उस मोर्टार और एक हल्की मशीनगन को लेकर एक पहाड़ी की घाटी में रह गया। अन्य साथी सदर मुकाम जाने के लिए एक दुर्गम पहाड़ी पर चढ़ गये। दोरजे अकेला रह गया। वह यह न जान सका कि अन्य साथी कहाँ हैं। दोरजे ने सोचा, वे मर गये हैं, या उन्हें चीनियों ने कैद कर लिया है। उसने सारी रात खुले आसमान के नीचे बर्फानी हवा में ठिठुरते हुए बिताई। सुबह होते ही वह चिपचैप नदी पर जमी, बर्फ पर चलकर लगभग दस मील दूर ऐसी चौकी पर पहुँचा जिसे सैनिक छोड़ चुके थे। उसके पैर सूज गये थे और सुन्न हो गये थे। पैरों से जूते निकालना असम्भव था। उसने चाकू से चमड़े की पट्टी उधेड़ी।

उसका अंग-अंग दुख रहा था। आगे चलना नितान्त असम्भव था। अतः उस चौकी पर ही कुछ समय गुजारने के अलावा और कोई चारा नहीं था। उसका सौभाग्य देखिए कि वहीं पर बंकर में उसे खाने-पीने का थोड़ा सा सामान मिल गया। इस प्रकार उस निर्जन बीहड़ स्थान में उसका राबिन्सन क्रूसो सा जीवन शुरू हुआ।

यहीं पर उसकी सूझ बूझ, दृढ़निश्चय और सब्र की परीक्षा थी। निरन्तर प्रार्थना करने से उसे आत्मशक्ति मिलती रही।

उसके पैर घावों से भरे हुए थे, चमड़ी सड़ रही थी, हिलना-डुलना तक असम्भव हो गया था। जिस बंकर में वह रह रहा था वह बर्फ गिरने से ऊपर से बन्द हो गया था और उसी बंकर के अन्दर वह समाधिस्थ हो गया था। दोरजे में इतनी तक शक्ति नहीं रह गई थी कि वह उस बर्फ को हटा सके। लेकिन वह जीना चाहता था और ईश्वर पर उसे पूरा भरोसा था। बंकर में जो गरम कपड़े रह गये थे उन्हीं से वह अपने को ढका रखता। पूरे जाड़े भर वह उसी बर्फानी गुफा में नितान्त अकेला पड़ा रहा। वह दिन-वार तक भूल गया। वह सूर्योदय या सूर्यास्त तक न देख सका।

जब बर्फ पिघलने लगी, तब उसने बंकर से निकलने का साहस किया। उसके दोनों पैर हिमदंश से पीड़ित थे और आधे पैर तो मृत के समान थे। उसने एक बरांड कोट का अस्तर फाड़कर उसके गरम कपड़े से अपने पैरों पर पट्टियाँ बाँधी और लकड़ी के दो कुन्दे लेकर उन्हें बैसाखी की तरह कांख के नीचे दबाकर वह लंगड़ाता हुआ उस गुफानुमा बंकर से बाहर निकला। वह धीरे-धीरे अपने को घसीटता हुआ आगे बढ़ा। वह भारतीय सदर मुकाम पर पहुँचना चाहता था, परन्तु उसे मालूम न था कि मुकाम किधर है। वह केवल भाग्य और भगवान के ही भरोसे चलता रहा। उसे यह भी पता न था कि चीनी किधर हैं? उन्होंने जो आक्रमण किया था, उसका क्या नतीजा निकला? आगे उसे एक टूटा-फूटा बंकर दिखाई दिया। वह थोड़ा-बहुत रहने लायक था उसने उसी को अपना घर बना लिया।

गर्मी का मौसम शुरू हो चुका था। खरगोश और चिड़िया

दिखाई देने लगी थीं। दोरजे किसी प्रकार उन्हें अपने बंकर में पकड़ लेता और उन्हें वहीं आग में भूनकर अपने पेट की ज्वाला शांत करता।

जुलाई महीने के प्रारम्भिक दिन थे। दोरजे को बाहर कुछ लोगों के चलने की आवाज सुनाई दी। उसे भय लगा कि कहीं चीनी न हों। वह और दुबक कर बैठ गया, लेकिन उसने सुना कि वे हिन्दी में बोल रहे हैं। दोरजे की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसकी आँखों में खुशी के आँसू भर गये। उसने अपनी समस्त शक्ति बटोर कर आवाज लगाई और तेजी से बाहर निकला। अपने साथियों को सामने देख वह उनके गले से लिपट गया। इतने महीनों के बाद उसे मनुष्य के दर्शन हुए थे और उनके गर्म शरीर का स्पर्श मिला था। एक एक करके उसके साथी उससे मिले। अब वह सुरक्षित था और बिना किसी भय के वह जी सकता था।

भारतीय गश्ती टुकड़ी के उन सैनिकों ने तत्काल दोरजे के लिए टट्टू का प्रबन्ध किया; क्योंकि दोरजे एक कदम भी नहीं चल सकता था। दो दिन तक टट्टू पर चलता रहा। एक अग्रिम चौकी पर पहुँचने के बाद वायुसेना का हेलिकोप्टर उसे सीधे लेह के सैनिक अस्पताल ले गया। यह बात १० जुलाई १९६३ की है।

उसीदिन स्थल सेना के जनरल चौधरी लेह के दौरे पर थे। वे सैनिक अस्पताल में लांस नायक दोरजे कालजङ्ग से मिले और उसे एक हाथघड़ी उपहार में दी। तब से वह घड़ी उसके शरीर का एक अङ्ग बन गई है। उसे अपनी घड़ी पर गर्व है और वह उसे कभी भी अपने से अलग नहीं करता।

लांसनायक दोरजे कालजंग जन्म से लद्दाखी है और बौद्धधर्म अनुयायी है। वह दूसरे विश्वयुद्ध के समय सेना में था। आज लग-भग पाँच वर्ष पहले वह जम्मू कश्मीर मिलिशिया (अब लद्दाख स्काउट)

में भरती हो गया था। उसे जिन कठिन परिस्थितियों से गुज़-रना पड़ा, उनसे वह अपनी उम्र से अधिक बूढ़ा दिखाई देने लगा है। आजकल वह अपनी खोई शक्ति को फिर से जुटाने के लिए आराम कर रहा है, ताकि यदि चीन का फिर हमला हुआ तो वह फिर उनसे लोहा ले सके।

—वीर सैनिक अपने प्राणों से अधिक अपने शस्त्रों को प्यार करते हैं। महार रेजीमेंट के जमादार भीमू कामले को इस प्रसंग में भुलाया नहीं जा सकता। वे अपने वीर जवानों की सहायता से ६० मील का सफर तय करके भारी मशीनगन दौलतवेग ओल्दी से वापस लाने में समर्थ हुए। दुश्मनों के घेरे से प्राणों की बाजी लगा कर, वे मशीनगन निकाल लाये थे।

—सेकेण्ड राजपूत रेजीमेंट के लान्स नायक विजयराज सिंह ने नेफा की अगली पंक्ति थागला की एक चौकी पर अपने साथियों के साथ बड़ी वीरता से दुश्मनों का मुकाबला किया। अन्त में घायल होकर अचेत हो गये। चीनी उन्हें लासा के कैम्प में ले गये। वहाँ उनके बायें पाँव का आधा पंजा काट डाला गया। कंधे में लगी गोली निकाले बगैर ही पट्टी बाँधी जाती रही। लासा कैम्प से युद्ध-बन्दियों की रिहाई के सिलसिले में विजयराज सिंह दिल्ली पहुँचाये गये। वहाँ आपरेशन कर उनके कंधे से गोली निकाली गई और उचित चिकित्सा की व्यवस्था हुई। अब वे स्वस्थ होकर अपने गाँव में हैं। उनका घर बस्ती जिला के गोपालपुर में है।

—अच्छे बुरे हर मौसम में, सीमा की रक्षा करने वाले जवानों को रसद आदि पहुँचाने में, ऊंचे पहाड़ों और बीहड़ स्थान से घायलों को [illegible] लाने में भारतीय वायुसेना के विमानचालकों ने जैसा [illegible] वह अपूर्व है।

[illegible] के किनारे, वालोंग मोर्चे पर घोर युद्ध होता रहा।

इस अवधि में भारतीय विमान-चालक छोटे से हवाई अड्डे पर, जो ऊँचे पहाड़ों पर छोटे विमानों के उतरने के लिए बनाये गये थे, सैनिक सामग्री पहुँचाते रहे। हवाई अड्डे पर चीनियों द्वारा गोले बरसाये जाते रहे, किन्तु विमान चालक उनकी परवाह नहीं करते हुए, अपना कर्तव्य पूरा करते रहे। यह विमान-चालकों के साहसिक
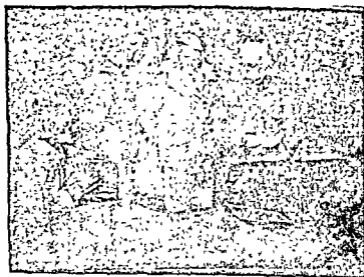
प्रतिरक्षा मन्त्री श्री चव्हाण, प० नेहरू के साथ घायल जवानों के बीच

कार्य का ही परिणाम था जो भारतीय सेना की मात्र एक ब्रिगेड चीनियों की एक डिवीजन से भी अधिक सैनिकों के दाँत खट्टे करती रही।

एक हेलीकोप्टर-चालक घायल जवानों को लाने के लिए उड़ा। घमासान लड़ाई जारी थी। उसे ऐसी दुर्गम खड़ी पहाड़ी पर जाना

था, जहाँ खच्चरों को भी ले जाना कठिन है। हेलिकोप्टर पर दुश्मनों ने गोलियों की बौछार शुरू की। हेलिकोप्टर छलनी हो गया। मशीन उड़ने के काबिल रही। हेलिकोप्टर पायलट गोलियों की बौछार के बीच से घायल जवानों को ले आया।

वह हवाई अड्डे पर लौटा। मशीन की जाँच करने लगा। सहसा फिर कहीं से घायल जवानों को लाने का उसे आदेश मिला। रात का अँधेरा बढ़ता जा रहा था। राह अनजानी थी। किन्तु लहू को लहू पुकार रहा था। वह हेलिकोप्टर उड़ा ले चला।

अँधेरा बढ़ गया था। वह कहाँ उतरे! एक सैनिक अधिकारी को उसकी परिस्थिति का ज्ञान हुआ। उसने टार्च की रोशनी दिखा-दिखाकर संकेत किया और किसी तरह वह हेलिकोप्टर उतार पाया।

वहाँ घायल जवानों को उनकी प्राण-रक्षा के लिए, अविलम्ब चिकित्सक के पास पहुँचाना था। अंधेरी रात की कालिमा बढ़ गई थी। पायलट ने फौजी अफसर से टार्च ली। उसे जाँघों में दबाकर, हेलिकोप्टर के पुर्जों पर रोशनी डाली और तारों की सहायता से दिशा का ज्ञान प्राप्त करता हुआ अपने अड्डे पर लौट आया।

श्री नगर से लेह की उड़ान और भी कठिन है। पहाड़ी क्षेत्र के जिस अड्डे से विमान उड़ता है वे इतनी तङ्ग हैं कि लगता है कि विमान के पङ्ख चट्टानों से टकराने ही वाले हैं। ऐसे कठिन मार्ग में उड़ानें भरते समय सहसा बादल का टुकड़ा सामने आकर मार्ग अवरुद्ध कर देता है। सामने कुछ दिखाई नहीं देता। हमारे साहस के पुतले विमानचालक ऐसे कठिन मार्ग में भी उड़ानें भर कर उन जवानों को रसद और सैनिक-सामग्री पहुँचाते हैं जो सीमा की रक्षा में मोर्चे पर डटे हुए हैं।

आजादी की रक्षा का उत्साह और मातृभूमि के प्रति प्रेम—भारतीय जवानों की शान है। अपने वीर सैनिकों और शहीदों

के प्रति भारतीय जनता के हृदय में अपार श्रद्धा और उचित सम्मान है। सरकार अपने सैनिकों को उनकी वीरता के लिए वीरचक्र प्रदान कर पुरस्कृत और सम्मानित करती है। हमारे जवानों को विश्वास है कि सारा देश उनके साथ है और अन्तिम जीत हमारी ही होगी।

—चोट डंके पर पड़ी उठ मोर्चा पहचान ले।
है घिरी आती प्रलय की आग घहराई हुई
युद्ध में चल शत्रु की सेना जहाँ छायी हुई
लड़, मिले जिससे न तेरी लाश शरमाई हुई
है बड़ा विश्वास जीवन से सदा को मान ले।
मर अगर तो बन कहानी देश पर बलिदान की
यदि रहे जीवित निशानी बन विजय की आन की
धार घायल रक्त की, ज्योतिर्शिखा वरदान की
हड्डियों के वज्र से इन तस्करों की जान ले।
—अञ्चल

५ महाराणा प्रताप : जो शान से जिये और आन पर मरे

वीरता और शौर्य की कहानियाँ यदि जवानों की रग-रग में नवीन उत्साह भरती हैं तो कायरों के हृदय के अंधेरे में आशा का दीप भी जलाती हैं।

महाराणा प्रताप का नाम वीरता के इतिहास में अगली पंक्ति में आता है। जो शान से जिये और आन पर मरे। उनकी असीम वीरता देशभक्ति और साहसिकता की साक्षी मेवाड़ के पहाड़ों की चोटियाँ, कन्दराएँ और हल्दीघाटी की धरती हैं।

स्वाधीनता के प्रति प्रेम और स्वाभिमान की रक्षा के लिए, ——

ने समस्त सुख-ऐश्वर्य पर लात मार दी : स्वर्ण और चाँदी के थाल के बदले पेड़ के पत्तों पर भोजन करना, घास-फूँस पर सोना स्वीकार किया, किन्तु अपना माथा कभी नहीं झुकाया।

अम्बर-नरेश मानसिंह शोलापुर के युद्ध में विजय-प्राप्ति कर लौट रहे थे। राह में वे राणा प्रताप के यहाँ ठहर गये। महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह पर उनके स्वागत की जिम्मेदारी पड़ी। जब थालियाँ परोसी गयीं, मानसिंह ने भोजन में साथ देने के लिए महाराणा प्रताप को बुलवाया। महाराणा प्रताप ने उनके साथ बैठना अस्वीकार कर दिया। मानसिंह चिढ़ गये। आवेश में वे थाल छोड़ कर, उठ गये। जाते-जाते महाराणा प्रताप को नीचा दिखाने का प्रण भी करते गये।

मानसिंह ने मुगलसम्राट अकबर के कान फूँके। महाराणा प्रताप को झुकाये बिना उन्हें चैन नहीं था। अकबर भला उनकी बात कैसे टालता जिनकी तलवार के साये में मुगल-साम्राज्य निरापद था!

महाराणा प्रताप को सूचना मिली कि उन्हें परास्त करने के लिए, शाहजादे सलीम के अधीन मुगल-सम्राट की विशाल सेना आ रही है। मुहब्बत खाँ और मानसिंह भी सलीम के साथ हैं।

महाराणा प्रताप आगबबूला हो उठे। उनके पास मात्र २२ हजार सैनिक थे। कुछ लड़ाकू भील भी थे।

संवत् १६३२ का श्रावण मास और शुक्ल पक्ष की सप्तमी। हल्दीघाटी में विशाल मुगलसाम्राज्य के सैनिकों पर महाराणा प्रताप अपने थोड़े से वीर सिपाहियों के साथ टूट पड़े।

महाराणा प्रताप का शौर्य ऐसा कि जिधर निकले, शत्रुओं को गाजर-मूली की तरह काट कर, मैदान साफ कर दिया।

उनके वीर साथियों की वीरता भी कम नहीं। वे रौद्ररूप धारण कर शत्रुओं के मुण्ड लुढ़का रहे थे।

मुगल-सम्राट की सेना मे खलबली मच गई। वे स्वाभिमानियों और स्वाधीनता-प्रेमियों की वीरता और शौर्य के सामने टिक न सके।

रणोन्मत्त प्रताप सिंह के समान विचरते हुए, मानसिंह को खोजने लगे। मानसिंह की परछाँई भी दिखाई न पड़ी, किन्तु उस क्रुद्ध सिंह के सामने पड़ गये शाहजादा सलीम जो हाथी के हौदे मे थे।

महाराणा प्रताप का प्रिय घोड़ा चेतक, अपने स्वामी का अभिप्राय समझ अपने पिछले पाँवों पर खड़ा हुआ। प्रताप ने एक ही प्रहार में सलीम के दोनों अंगरक्षकों को मार गिराया।

सलीम की रक्षा के लिए दौड़ पड़े मुगल-सैनिक तो चेतक ने अपने पाँव उधर बढ़ाये। प्रताप ने बीस-तीस मुण्ड लुढ़काये तो चेतक ने दौड़ कर, सलीम के हाथी के मस्तक पर अपने अगले पाँव रख दिये।

प्रताप ने अपना लम्बा भाला फेंका सलीम पर। हाथी ने उचक कर अपने स्वामी की रक्षा की। भाला सलीम के हाथी के महावत को यमलोक पहुँचाता हुआ हौदे से जा टकराया।

महावत गिरा और हाथी, सलीम की प्राण-रक्षा के लिए, भागा। चेतक भला कब चूकने वाला था! उसने हाथी का पीछा किया।

सलीम भागा तो उसकी सेना भी भागी। महाराणा उसके प्राण के ग्राहक बने, पीछा करने लगे। सामने जा अभागे मुगल सैनिक पड़ जाते वे महाराणा की तलवार के शिकार बन जाते।

मुहब्बत खाँ ने अपनी सेना को उत्साहित किया। शाहजादा सलीम को प्रताप के वार से उसने नहीं बचाया तो अकबर को भला कैसे मुँह दिखलाएगा! मानसिंह अपनी जान दे कर भी सलीम की रक्षा के लिए तैयार थे, किन्तु प्रताप के सामने आने का उनमें साहस न था।

मुहब्बत खाँ और मानसिंह का प्रयास सफल रहा। मुगल-सम्राट के सैनिक झुण्ड के झुण्ड प्रताप पर टूट पड़े। प्रताप घिर गये, चक्रव्यूह के बीच अभिमन्यु की तरह।

अकेले वह और चारों ओर मुगल सम्राट की विशाल सेना। वीरवर प्रताप के माथे पर चिन्ता की रेखा नहीं। भुजाएँ फड़क रही हैं और आँखें अंगारे बरसा रही हैं। स्वामी भक्त चेतक में गजब की स्फूर्ति आ गई है और प्रताप की तलवार छक कर रक्त-स्नान कर रही है।

मुगल विशालवाहिनी से घिरे प्रताप के प्राण की रक्षा के लिए, उनके वीर सैनिक दौड़े। किन्तु वे शत्रुओं को काफी संख्या में मौत के घाट उतारने पर भी प्रताप के पास नहीं पहुँच सके।

सन्ध्या हो गई। युद्ध समाप्त होने को आया। महाराणा प्रताप के वीर सरदारों को विश्वास हो गया कि आज प्रताप का प्रताप समाप्त हो गया। लेकिन महाराणा प्रताप शत्रुसेना को सिंह के समान चीरते-फाड़ते रौंदते हुए निकल आये।

उसके पश्चात् मुगल-सम्राट ने महाराणा प्रताप को झुकाने में अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। उनकी सेनाएँ प्रताप के राज्य भर में जगह-जगह पड़ाव डाल कर अड़ गईं। मानसिंह जब तक प्रताप का स्वाभिमान नष्ट न कर दें, चैन कहाँ!

महाराणा प्रताप जंगलों और पहाड़ियों के बीच भीलों के साथ सपरिवार रहने लगे। मुगल-सम्राट से हार स्वीकार करते ही वे अपना पूरा राज्य वापस पा सकते थे, किन्तु उन्हें स्वतंत्रता बेंच कर सुख-सुविधाएं प्राप्त करना भला कैसे स्वीकार हो!

उनके पास धन नहीं जो सेना का संगठन करते! स्वयं जङ्गली फल-मूल खाकर जीवन गुजार रहे थे। किसी दिन उपवास भी करना पड़ रहा था। ऐसे ही दुर्दिन में एक घटना घटी :—

एक भील घास के बीजों का आटा दे गया। उसकी रोटियाँ बनीं। एक-एक रोटी परिवार के प्रत्येक सदस्यों के हिस्से में मिली। उनकी एक लड़की जब रोटी खाने बैठी, एक वनबिलाव उसकी रोटी ले भागा। वह ज़ोर-जोर से रोने-चिल्लाने लगी। महाराणा प्रताप भूख की अग्नि को

टालने के प्रयत्न में लेटे हुए थे। लड़की की करुणाभरी चीत्कार से उनकी आँखों में आँसू भर आये। मोह ने उनकी दृढ़ता को झकझोर दिया। भावावेश में उन्होंने अकबर को एक पत्र लिखा।

मुगल सम्राट अकबर को प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अपने दरबार के एक कवि को अकबर ने वह पत्र दिखलाया। कविवर पृथ्वीराज को वह पत्र पढ़कर बड़ी ठेस लगी। उसने मन के भावों को दबा कर अकबर से कहा, कि यह पत्र महाराणा प्रताप का हरगिज नहीं हो सकता, किसी ने उनकी हँसी उड़ाने के लिए अथवा आपको भ्रम में डालने के लिए यह पत्र भेजा है।

महाराणा प्रताप का भावावेश जब दूर हुआ, वे अपनी आतुरता पर पश्चाताप करने लगे। उसी समय उन्हें कविवर पृथ्वीराज का पत्र मिला।

'स्वस्ति श्री स्वाभिमानी कुल कमल तथा हिन्दुआसूर्य सिद्ध
शृगों में सिंह सुश्री शुचि रुचि सुकृति श्री प्रताप प्रसिद्ध
लज्जाधारी हमारे कुशलयुत रहें, आप सद्धर्म-धाम
श्री पृथ्वीराज का हो विदित विनय से प्रेमपूर्ण प्रणाम

मैं कैसा हो रहा हूँ, इस अवसर में, घोर आश्चर्य लीन
देखा है, आज मैंने अचल चल हुआ, सिन्धु संस्था विहीन
देखा है. क्या कहूँ मैं, निपतित नभ से इन्द्र का आज छत्र
देखा है, और भी हाँ, अकबर कर में आपका सन्धि-पत्र

आशा की दृष्टि से वे पितरगण किसे स्वर्ग से देखते हैं?
सर्चा वंश-प्रतिष्ठा क्षिति पर अपनी वे कहाँ लेखते हैं?
मर्यादा पूर्वजों की अबतक हममें दृष्टि आती कहाँ है?
होती है व्योमवाणी वह गुण गरिमा आपही में यहाँ है

खो के स्वाधीनता को अब हम सब हैं नाम ही के नरेश
ऊँचा है आपही से इस समय अहा! देश का शीषदेश!
जाते हैं क्या झुकाने अब उस शिर को आप भी हो हताश?
सारी राष्ट्रीयता का शिव! शिव! फिर तो हो चुका सर्वनाश

हाँ, निस्सन्देह देगा अकबर हमसे आपको मान दान
खोते हैं आप कैसे उस पर अपना उच्च धर्माभिमान?
छोड़े स्वाधीनता को मृगपति! वन में दुःख होता बड़ा है
लोहे के पींजड़े में तुम मत रहना स्वर्ग का पींजड़ा है?

ये मेरे नेत्र हैं क्या कुछ विकृत, कि हैं ठीक ये पत्र-वर्ण?
देखूँ है क्या सुनाता विधि अब मुझको, व्यग्र हैं हाय! कर्ण
रोगी हों नेत्र मेरे, वह लिपि न रहे, आपके लेख जैसी
हो जाऊँ देव! चाहे बधिर पर, सुनूँ बात कोई न वैसी

बाधाएँ आपको हैं बहुविध वन में, मैं इसे मानता हूँ
शाही सेना सदा ही अनुपद रहती, सो सभी जानता हूँ
तो भी स्वाधीनता ही विदित कर रही आपको कीर्तिशाली
हो चाहे वित्तवाली; पर उचित नहीं, दीनता चित्त वाली

आये थे याद है क्या, जिस समय वहाँ 'मान' सम्मान पा के
खाने को थे न बैठे मिल कर उनके साथ में आप आ के
वे ही ऐसी दशा में हँस कर कहिए, आपसे क्या कहेंगे?
अच्छी हैं ये व्यथाएँ, पर वह हँसना आप कैसे सहेंगे?

है जो आपत्ति आगे वह अटल नहीं, शीघ्र ही नष्ट होगी
कीर्ति श्री आपकी यों प्रलय तक सदा और सुस्पष्ट होगी
घेरे क्या व्योम में है अविरल रहती सोम को मेघ-माला?
होता है अन्त में क्या वह प्रकट नहीं और भी कान्तिवाला?
है सच्चा धीरता का समय बस यही, हे महाधैर्यशाली!
क्या विद्युद्वह्नि का भी कुछ कर सकती वृष्टि-धारा प्रणाली?

हाँ भी तो आपदाएँ अधिक अशुभ हैं क्या पराधीनता से ?
वृक्षों जैसा झुकेगा अनिल-निकट क्या शैल भी दीनता से ?
ऊँचे हैं और हिन्दू, अकबर-तम की है महा राजधानी
देखी है आपही में सहज सजगता है स्वधर्माभिमानी

सोता है देश सारा यवन-नृपति का ओढ़ के एक वस्त्र
ऐसे में दे रहे हैं जगकर पहरा आपही सिद्ध-शस्त्र
डूबे हैं वीर सारे अकबर-बल का सिन्धु ऐसा गभीर
रक्खे हैं नीर नीचे कमल-सम वहाँ आपही एक धीर

फूलों सा चूम डाला अकबर-अलि ने देश है ठौर-ठौर
चम्पा-सी लाज रक्खी, अविकृत अपनी, धन्य मेवाड़-मौर !
सारे राजा झुके हैं, जब अकबर के तेज आगे सभीत
ऊँचो ग्रीवा किये हैं सतत तब वहाँ आप ही हैं विनीत

आर्यों का मान रक्खा, दुख सहकर भी है प्रतिज्ञा न टाली
पाया है आपने ही विदित भुवन में नाम आर्यांशुमाली
गाते हैं आपका ही सुयश कवि कृती छोड़ के और गाना
वीरों की वीरता को सुघर मिल गया चेतकारूढ़ राना

माँ ! है जैसा प्रताप प्रियसुत, जन तू तो तुझे धन्य मानें
सोता भी चौंकता है अकबर जिससे साँप हो ज्यों सिराने
"राना ऐसा लिखेंगे, अघटित है-को किसी ने हँसी है
मानो हैं एक ही वे, बस नस-नस में वीरता ही धँसी है"
यों ही मैंने सभा में कुछ अकबर की वृत्ति है आज फेरी
रक्खो, चाहे न रक्खो, अब सब विधि है आपको लाज मेरी
हो लक्ष्य-भ्रष्ट चाहे कुछ, पर अब भी तीर है हाथ ही में
होगा है वीर ! पीछे विफल सँभलना, सोचिये आप जी में
आत्मा से पूछ लीजे, कि इस विषय में आपका धर्म क्या है ?
होने से मर्म पीड़ा, समझ न पड़ता, कर्म दुष्कर्म क्या है !

क्या पश्चाताप पीछे न इस विषय में आप-ही-आप होगा ?
मेरी तो धारणा है, कि इस समय भी आपको ताप होगा
क्या मेरी धारणा को कह मुख से आप सच्चा करेंगे ?
या पक्के स्वर्ण को भी सचमुच अब से ताप कच्चा करेंगे ?

जो हो, ऐसा न हो, जो हँसकर मन में आनन्द पावें
जीना है क्या सदा को, फिर अपयश की ओर आप क्यों जावें ?
पृथ्वी में हो रहा है सिर पर सबके मृत्यु का नृत्य-नित्य
क्या जानें, ताल टूटे किस पर उसकी कीजिये कीर्ति-कृत्य

हे राजन् ! आपको क्या यह विदित नहीं आप हैं कौन व्यक्ति ?
होने दीजे न हा ! हा ! शुचितर अपने चित्त में यों विरक्ति
आर्यों को प्राप्त होगी, स्मरण कर सदा आपकी आत्मशक्ति
रक्खेंगे आप में वे सतत हृदय से देव की भाँति भक्ति

शूरों के आप स्वामी यदि अकबर की वश्यता मान लेंगे
तो दाता दान देना तज कर उलटा आपही दान लेंगे
सोवेंगे आप भी क्या इस अशुभमयी घोर काली निशा में ?
होगा क्या अंशुमाली समुदित अब से अस्त वाली दिशा में ?

दो बातें पूछता हूँ, अब अधिक नहीं, हे प्रतापी प्रताप !
आज्ञा हो, क्या कहेंगे अब अकबर को तुर्क या शाह आप ?
आज्ञा दीजे मुझे जो उचित समझिये, प्रार्थना है प्रकाश
मूँछें ऊँची करूँ या सिर पर पटकूँ हाथ हो के हताश ?

अनुवादक—श्री मैथिली शरण गुप्त

महा राणा प्रताप की नस-नस में विजलियाँ कौंध गईं । भुजाएँ फड़क उठीं । नवीन उत्साह से भरे वे मुगलसेना पर टूट पड़े । उनकी लम्बी और वजनी तलवार छक कर खून पीने के बाद भी प्यासी ही रही ।

अकेला वह दो-चार सौ सैनिकों का मुण्ड लुढ़का कर वापस आ जाते। सेना के नवीन संगठन के लिए उन्हें बहुत धन की आवश्यकता थी।

उसी समय उनके कोषाध्यक्ष एवं मंत्री भामाशाह उनसे मिले। भामाशाह ने स्वाभिमान की रक्षा और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए धन का भंडार दे दिया। महाराणा प्रताप की आशाएँ जाग उठीं। उन्होंने भामाशाह से प्राप्त धन से अविलम्ब सेना का संगठन किया और मुगल सम्राट की सेना को अपने देश की सीमा से भगाने में लग गये।

उनकी वीरता और शौर्य के सामने उनके शत्रुओं की सेना के पाँव उखड़ गये। उन्होंने अपने देश के सैनिकों के साहस और वीरता को सदा प्रोत्साहित किया तथा शत्रु द्वारा अधिकृत अपने देश की धरती —मेवाड़ राज्य—को छीन लिया।

मानसिंह महाराणा प्रताप को झुका नहीं सके, किन्तु प्रताप जब उनके अम्बर राज्य की हरी-भरी धरती को उजाड़ते हुए, युद्ध के लिए ललकारने लगे तो मानसिंह को स्वयं झुकना पड़ा।

—हम न पराजित किसी शत्रु से भी हो पाते इस जग में
यदि ये जयचन्दी दीवारें आ जातीं न विजय मग में
अब न चलेंगे परमारों पर चौहानों के तीर कभी
अब न लड़ेंगे पृथ्वीराज से आल्हा-ऊदल वीर कभी
मानसिंह के प्रति प्रताप से भूल न होने पाएगी
लोहे की छाती से लोहे की छाती मिल जाएगी
एक तरफ से आज लड़ेंगे मानसिंह रणधीर प्रताप
दोनों मिलकर आज मिटा देंगे माँ तेरे चिर सन्ताप
अब न वीर जयसिंह शिवा की बात टालने पाएँगे

—देवराज 'दिनेश'

पराक्रमी शिवाजी : वीर काव्य के नायक

हजार शिक्षक बालक को वह शिक्षा नहीं दे सकते, जो अकेली माता दे सकती है। वीर क्षत्राणी जीजोबाई अपने पुत्र शिवाजी को उनके बचपन से ही शूर वीरों की कहानियाँ सुनाने लगी थीं जिससे बाल्यावस्था में ही उनके हृदय में साहस, शौर्य और महत्वाकांक्षाएँ जाग गईं। वे शक्ति के पुजारी बन गये।

शिवाजी का जन्म बम्बई प्रान्त के 'शिवनेरी' में—सन् १६२७ में—हुआ। अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा मिली। घोड़सवारी में अद्वितीय निकले। एक दिन भवानी के मन्दिर में वे प्रार्थना करने लगे—"माँ भवानी, मेरी भुजाओं में बल दो! मैं मुर्दों की तरह नहीं जीना चाहता। मैं स्वतंत्रता चाहता हूँ। मैं शान से मस्तक ऊँचा रखना चाहता हूँ..."

उन्होंने अपने समवयस्क नवयुवकों के एक दलका संगठन किया और बड़ी चतुराई से तोरण का किला अधिकार में ले लिया। संयोग से उन्हें—उस किले में—गड़ा हुआ धन प्राप्त हुआ। धन की सहायता में उन्होंने अपने दल को सेना का रूप दिया।

बीजापुर के शासक आदिलशाह ने शिवा जी के पिता शाहजी को कपट नीति का सहारा ले, बन्दीगृह में डाल दिया। शिवाजी अपमान से क्षुब्ध हो उठे। वे मुगलों के सहायक बन बैठे। मुगल सम्राट की निगाह बीजापुर पर गड़ी थी। घबड़ा कर आदिलशाह ने शाहजी को छोड़ दिया।

शिवाजी अपमान का कड़वा घूँट पीकर मौन न रहे। वे आँधी तूफान की तरह बढ़े और 'तोरण' के अतिरिक्त सात किलों पर उनका झंडा फहराने लगा।

बीजापुर के शासक ने अफजल खाँ के अधीन ६० हजार सेना भेजी जिसमें तोपखाना भी था। अफजल खाँ ने शिवाजी को बुलवाया। उसका अभिप्राय छल से शिवाजी को कैद कर लेने का था।

शिवाजी, अफजल खाँ के शिविर में पहुँचे। साधारण वार्त्तालाप के पश्चात् ही अफजल खाँ ने एकाएक उन पर तलवार चलायी। शिवाजी अपनी सजगता के कारण बाल बाल बच गये।

अफजलखाँ ने सिंह पर प्रहार किया था। क्रुद्ध सिंह की तरह शिवाजी ने अपने व्याघ्र नख से अफजलखाँ की छाती फाड़ डाली। अफजलखाँ का एक अंगरक्षक उनकी ओर बढ़ा तो उसकी भी वही हालत हुई।

फिर तो शिवाजी के वीर साथी भूखे शेर की तरह अफजलखाँ की सेना पर टूट पड़े और शत्रुओं को भेड़ की तरह काटने लगे। कहीं मुण्ड गिरा तो कहीं किसी का हाथ कटा और कहीं किसी की आँतें बाहर निकल आईं। शिवाजी और उनके साथियों ने शत्रुओं की लाशों का ढेर लगा दी। उनकी अद्भुत वीरता और पराक्रम देख अफजलखाँ की सेना सिर पर पाँव रखकर भागी।

शिवाजी के अधिकार में चार हजार घोड़े आये और काफी हथियार हाथ लगे।

उसके पश्चात् शिवाजी को अधिकार में करने के लिए बीजापुर के शासक ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। दो वर्षों तक घमासान युद्ध होता रहा। शिवाजी अपने शत्रुओं के छक्के छुड़ाते रहे। जिन सरदारों ने उनके पिता को कभी छल से कैद किया था उन्हें खोज-खोज कर शिवाजी ने यमलोक पहुँचा दिया।

परास्त होकर, बीजापुर के शासक ने शिवाजी से सन्धि कर ली। उसके पश्चात् मुगलसम्राट औरंगजेब ने शाइस्ताखाँ के अधीन उनके विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजी।

शाइस्ता खाँ पूना में अपनी सेना के साथ डट गया। वह लड़ाई के लिए वर्षा ऋतु गुजर जाने की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन, रात में बनावटी बारात के साथ शिवाजी उपर्युक्त सेना के शिविर को घेर

से गुजरे। वे वेश बदले हुए थे। शिविर में नृत्य-संगीत हो रहा था। किसी तरह वह शिविर में घुस गये।

रात को शाइस्ता खाँ अपने शयनागार में सो रहा था। अचानक उसकी आँखें खुलीं। वह चौंक पड़ा। सामने कुछ ही दूरी पर शिवाजी खड़े थे। वह घवड़ा कर, भागा। शिवाजी ने तलवार चलायी। शाइस्ता खाँ की तीन अँगुलियाँ कट कर गिर पड़ीं। शिवाजी ने उसका पीछा किया तो शाइस्ता खाँ के पुत्र ने उन पर प्रहार किया। वे वच गये, किन्तु उनकी तलवार के एक ही वार में खाँ का पुत्र दो टुकड़े हो गया।

क्रुद्ध शाइस्ता खाँ ने सुवह होते-होते शिवाजी पर चढ़ाई कर दी किन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी। तव मुगलसम्राट की ओर से शिवाजी को परास्त करने राजा जयसिंह शाहजादा मुअज्जम के साथ आये।

उनको भी शिवा जी का लोहा मानना पड़ा।

कुछ वर्षों के पश्चात् राजा जयसिंह के बहुत कहने-सुनने से शिवाजी दिल्ली आये। मुगल-सम्राट औरंगजेब ने उन्हें वन्दी वना लिया।

वन्दीगृह में एक दिन शिवाजी ने दान करने के लिये वड़े-वड़े झपोले में मिठाइयाँ मँगवायी और वड़ी चतुरता से एक झपोले में वैठ कर, वन्दीगृह के वाहर निकल गये। उन्हें पकड़ने का वहुत प्रयत्न हुआ, किन्तु वे फिर चंगुल में न आये।

मुगल सम्राट ने यशवन्त सिंह और मुअज्जम की अधीनता में एक वड़ी सेना, शिवाजी को परास्त करने के लिए, भेजी। पराक्रमी शिवाजी के सामने किसी की दाल न गली। वे महाराजा वन गये और अपने नाम के सिक्के चलाने लगे।

आंखों में खटक रहा है। वह तेरी वीरता को ललकार रहा है और तू मौन बैठा है।

शिवाजी माता के कथन का अभिप्राय समझ गये। वे मौन हो गये। सिंहगढ़ पर विजय पाना लोहे के चने चबाने के समान था। किले की बनावट ऐसी थी कि उस पर चढ़ना बहुत ही कठिन काम था और उसकी सुरक्षा के लिए चुने हुए वीर सैनिक नियुक्त थे।

शिवाजी को मौन देख जीजाबाई आतुर हो उठी—"क्या मेरी अभिलाषा पूर्ण न होगी ? जब तक सिंहगढ़ पर तेरा भंडा फहराते न देख लूँगी, अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगी "

और उस रात को ही सिंहगढ़ के रक्षकों ने देखा कि गढ़ पर कोई चढ़ रहा है। गढ़ पर चढ़ने वाले शिवाजी के सेनापति वीर ताना जी थे। शिवाजी की सेना ने कई ओर से गढ़ पर चढ़ाई कर दी थी। घमासान लड़ाई हुई। गढ़ के चारों ओर लाशों की ढेर लग गई। सिंहगढ़ पर शिवाजी का झण्डा फहराने लगा।

सिंहगढ़ पर शिवाजी के अधिकार की सूचना से मुगलसम्राट औरंगजेब चौंक उठा। उसने महावत खाँ के अधीन ४० हजार सेना भेजी फिर भी शिवाजी अपनी वीरता और शौर्य के कारण अजेय ही रहे। शिवाजी ने सैन्य-संचालन और मदान्ध शत्रुओं का दर्प चूर्ण करने में जिस प्रतिभा और वीरता का परिचय दिया, भला उसे कैसे कोई भुलाएगा ?

वे एक स्वतंत्रता के पुजारी साहसी वीर ही नहीं, विद्यानुरागी, कवि और संयमी भी थे। उनपर समर्थ गुरु रामदास तथा तुकाराम के विचारों का बहुत अधिक प्रभाव था। एक बार उनका एक सरदार 'कल्याण' पर चढ़ाई के पश्चात् वहाँ के सूबेदार मौलाना अहमद की सालो को पकड़ लाया।

वह अद्वितीय सुन्दरी थी। शिवा जी ने उसे देखकर कहा—'यदि

से गुजरे। वे वेश बदले हुए थे। शिविर में नृत्य-संगीत हो रहा था। किसी तरह वह शिविर में घुस गये।

रात को शाइस्ता खाँ अपने शयनागार में सो रहा था। अचानक उसकी आँखें खुलीं। वह चौंक पड़ा। सामने कुछ ही दूरी पर शिवाजी खड़े थे। वह घबड़ा कर, भागा। शिवाजी ने तलवार चलायी। शाइस्ता खाँ की तीन अँगुलियाँ कट कर गिर पड़ीं। शिवाजी ने उसका पीछा किया तो शाइस्ता खाँ के पुत्र ने उन पर प्रहार किया। वे बच गये, किन्तु उनकी तलवार के एक ही वार में खाँ का पुत्र दो टुकड़े हो गया।

क्रुद्ध शाइस्ता खाँ ने सुबह होते-होते शिवाजी पर चढ़ाई कर दी किन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी। तब मुगलसम्राट की ओर से शिवाजी को परास्त करने राजा जयसिंह शाहजादा मुअज्जम के साथ आये।

गोली वक के घोड़े को लगी। घोड़े के साथ ही वक भी गिरा। वक फुर्ती से उठा और मंगलपाण्डेय पर पिस्तौल से गोली मारी। निशाना चूक गया। साहसी मंगल पहले से अपनी रक्षा के लिए तैयार था।

वक अंगारों पर लोटने लगा। क्रोधावेश में वह तलवार उठाये मंगल पर झपटा। उसके अंगरक्षक ने भी उसका अनुकरण किया।

मंगल पाण्डेय तलवार खींचकर, मैदान में उतर आया। वह वार बचाते हुए, दो अंग्रेजों से लड़ रहा था। चारों ओर सिपाही खड़े होकर उसकी वीरता देख रहे थे। दोनों अंग्रेज मंगल की तलवार से जख्मी हो गये, फिर भी भारतीय सिपाहियों के सामने हार मानने के लिए तैयार न थे।

लड़ते-लड़ते थक कर और जख्मों से लगातार लहू बहते रहने के कारण अशक्त होकर एक अंग्रेज गिर पड़ा। दूसरे का सर उड़ जाता, किन्तु उसी समय शेख पल्टू नामक एक सिपाही ने मंगल की बाँह पकड़ ली।

लेफ्टिनेण्ट वक ने अपने अंगरक्षक को उठाया, जो मरा नहीं था, और लहू का घूँट पीकर अंगरक्षक के साथ वहाँ से चला गया।

कुछ देर बाद कर्नल ह्वीलर आया। उसने सिपाहियों को आदेश दिया—

"मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करलो!"

कोई सिपाही हिला तक नहीं।

कर्नल झुंझलाता हुआ जनरल के बंगले पर पहुँचा। उसे सारी घटनाएँ सुनाई। जनरल हेयर्स अपने दो नवयुवक पुत्रों के साथ घोड़े पर सवार सिपाहियों के पास पहुँचा। वे तीनों युद्ध के लिए तैयार होकर आये थे। उनके साथ कुछ अन्य गोरे सैनिक भी थे।

जनरल ने दूरदर्शिता का परिचय दिया। उसने शेख पल्टू को

मेरी माता इतनी सुन्दरी होती तो मैं इतना कुरूप नहीं होता !' और उसे सम्मानपूर्वक लौटा दिया ।

—अब न चलेगी जननि किसी की तुझपर नादिरशाही क्रूर
आँख फोड़ देंगे यदि देखेगा कोई लंगड़ा तैमूर
सोमनाथ की घटना घट न सकेगी तेरी धरती पर
प्रबल संगठित शक्ति बने तेरे सुत बलि के हित तत्पर
अब न अकेला भीम लड़ेगा महमूदी तलवारों से
बली भोज रिपुवक्ष चीर देगा निज वज्र प्रहारों से
दिल्ली और महोबा आपस में न कभी टकरायेंगे....

देवराज 'दिनेश'

मंगल पाण्डे : वह चिनगारी जिससे आग भड़क उठी

२५ मार्च, १८५७

"कहाँ है वह ?" लेफ्टिनेण्ट बक ने पूछा—"कहाँ है ?" वह घोड़े पर सवार था। फौजी पोशाक में अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित। उसके हाथ में भरी हुई पिस्तौल थी। उसे खबर मिली थी कि मंगल पाण्डेय नामक एक सिपाही सेना में विद्रोह की आग भड़का रहा है।

हथियारों से सुसज्जित होकर, मंगल पाण्डेय अपनी बैरक से बाहर निकल पड़ा था और बन्दूक लेकर घूम रहा था। उसे खबर मिली थी कि देशी सिपाहियों के दमन के लिए, कलकत्ते में गोरी सेना पहुँच गई है और शीघ्र ही वहाँ पहुँचने वाली है। स्वाभिमानी और स्वतंत्रता प्रेमी मंगलपाण्डेय बैरकपुर के सिपाहियों में स्वतंत्रता का मंत्र फूँक रहा था।

लेफ्टिनेण्ट बक जहाँ था उसके निकट ही एक तोप थी। उस तोप की आड़ में खड़े होकर मंगलपाण्डेय ने बन्दूक की गोली से अपनी स्थिति का प्रमाण दिया।

गोली वक के घोड़े को लगी। घोड़े के साथ ही वक भी गिरा। वक फुर्ती से उठा और मंगलपाण्डेय पर पिस्तौल से गोली मारी। निशाना चूक गया। साहसी मंगल पहले से अपनी रक्षा के लिए तैयार था।

वक अंगारों पर लोटने लगा। क्रोधावेश में वह तलवार उठाये मंगल पर झपटा। उसके अंगरक्षक ने भी उसका अनुकरण किया।

मंगल पाण्डेय तलवार खींचकर, मैदान में उतर आया। वह वार बचाते हुए, दो अंग्रेजों से लड़ रहा था। चारों ओर सिपाही खड़े होकर उसकी वीरता देख रहे थे। दोनों अंग्रेज मंगल की तलवार से जख्मी हो गये, फिर भी भारतीय सिपाहियों के सामने हार मानने के लिए तैयार न थे।

लड़ते-लड़ते थक कर और जख्मों से लगातार लहू बहते रहने के कारण अशक्त होकर एक अंग्रेज गिर पड़ा। दूसरे का सर उड़ जाता, किन्तु उसी समय शेख पल्टू नामक एक सिपाही ने मंगल की बाँह पकड़ ली।

लेफ्टिनेण्ट वक ने अपने अंगरक्षक को उठाया, जो मरा नहीं था, और लहू का घूँट पीकर अंगरक्षक के साथ वहाँ से चला गया।

कुछ देर बाद कर्नल ह्वीलर आया। उसने सिपाहियों को आदेश दिया—

"मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करलो!"

कोई सिपाही हिला तक नहीं।

कर्नल झुंझलाता हुआ जनरल के बंगले पर पहुँचा। उसे सारी घटनाएँ सुनाईं। जनरल हेयर्स अपने दो नवयुवक पुत्रों के साथ घोड़े पर सवार सिपाहियों के पास पहुँचा। वे तीनों युद्ध के लिए तैयार होकर आये थे। उनके साथ कुछ अन्य गोरे सैनिक भी थे।

जनरल ने दूरदर्शिता का परिचय दिया। उसने शेख पल्टू की प्रशंसा

की। उसे सिपाही से हवलदार बनाने का वचन दिया। अन्य सिपाहियों को भी अपनी वाक्यचातुरी से प्रभावित करने लगा।

मंगल पाण्डेय बन्दूक लिये मुकाबला करने को तैयार था। जनरल को देखते ही उसने बन्दूक सँभाली, किन्तु उसका हाथ रुक गया। उसने जनरल के साथ कुछ ऐसे सिपाहियों को देखा जिससे उसके भारतीय लहू का गहरा सम्बन्ध था।

उसके हृदय को गहरा धक्का लगा। उसने उसकी स्वतंत्रता के अपहरण करने और उसके स्वाभिमान को धक्का पहुँचाने वालों के हाथ मे पड़ने से पूर्व मौत को गले लगाना ही अच्छा समझा।

भावावेश में बन्दूक की नली का मुँह अपनी ओर कर, उसने पैर के अँगूठे से घोड़ा दबा दिया।

किन्तु वह मरा नहीं। घायल होकर गिर पड़ा। हाँ, घाव सांघातिक था। जनरल ने उसे अस्पताल भिजवा दिया।

६ अप्रैल १८५७ को फौजी अदालत द्वारा मंगल पाण्डेय को फाँसी की सजा सुनाई गयी।

८अप्रैल १८५७ को गदर का पहला विद्रोही सिपाही मंगल पाण्डेय फाँसी के तख्ते पर खड़ा किया गया—

"तुम्हें कुछ कहना है ?"

मंगलपाण्डेय ने उत्तर दिया—'हाँ।'

"क्या ?"

"देशवासियों से कह देना, उन्हें मेरे लहू की सौगन्ध है, विदेशियों से अपने देश की धरती को मुक्त करा कर ही वे दम लेंगे !......"

उसके बाद तख्ता हटा और फांसी की रस्सी पर वह लटक गया और उसके गरम खून ने खूनी क्रान्ति की आग भड़का दी।

बेड़ियाँ कसमसा उठीं।

"शहीदों का लहू, जो कारागार में, निर्वासन में और फाँसी के तख्तों पर पड़ा है, वह आज स्वतन्त्रता की फसल में अंकुरित हो गया है।

● कुँवरसिंह : जिनकी वीरता बुढापे में प्रकट हुई

> माथ न नवायेंगे गँवायेंगे न गौरव को,
> नाथ न कहेंगे औ न दास कहलायेंगे
> मित्र मित्र ही हैं यह दावा है कि शत्रु तक
> बलि बलि जायेंगे हमारे बलिदान पर

भारतीय सैनिकों में रोष की लहर फैल गई थी। बैरकपुर में मंगलपाण्डेय की फाँसी ने आग में घी का काम किया। देशभर में सैनिकों के बीच गुप्त मन्त्रणाएं होने लगीं। 'लालकमल' कलकत्ते से पेशावर तक प्रत्येक सिपाहियों के हाथ से गुजरा और 'चपाती' गाँव-गाँव में घुमाई गयी। ३१ मई १८५७ को देश भर में एक साथ मिल कर गुलामी की जंजीर तोड फेंकने का निश्चय हुआ।

बिहार में भी विद्रोह की आग भडकी। पटने के तत्कालीन कमिश्नर मिस्टर टेलर पूरी शक्ति से विद्रोहियों के दमन में जुट गये। पटने के वाजुलहक, अहमदुल्ला और शाहमुहम्मद हुसेन नामक तीन मौलवियों को उसने कैद कर लिया। जनता बिगड गई। एक अंग्रेज मारा गया। मार्शल-ला जारी हो गया।

उस अंग्रेज की हत्या के अभियोग में पीरअली नामक एक पुस्तक-विक्रेता पकड़ा गया। विप्लवी नेताओं के रहस्य प्रकट करने के लिए उसपर अमानुषिक अत्याचार किया गया, किन्तु कुछ नहीं बताया।

पीरअली को फाँसी की सजा सुनायी गई। उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—"मुझे क्या, सैकड़ों फाँसी पर लटका दिये जायें तो भी

विद्रोह की आग ठंढी न होगी। एक शहीद होगा तो उसके स्थान पर सौ शहीद खड़े होंगे।"

शाहाबाद जिले के जगदीश पुर के कुँवर सिंह की उम्र ८० वर्ष की सीमा पार कर रही थी, किन्तु विदेशियों से अपने स्वदेश की धरती मुक्त कराने के लिए उनके सीने के भीतर आग धधक रही थी उन्होंने अपने विश्वासी कर्मचारी हरिकिशन सिंह को दाना पुर फौजी शिविर में भेजा।

हरिकिशन सिंह ने सफलता प्राप्त की। दानापुर के भारतीय सैनिकों ने विद्रोह का झण्डा उठा लिया। हरिकिशन सिंह सैनिकों के साथ जगदीशपुर पहुँचे। कुँवर सिंह अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो घोड़े पर सवार हो गये। वे सैनिकों के साथ आरा पहुँचे।

आरा में कुवरसिंह ने पहुँचते ही खजाने पर अधिकार किया और अंग्रेजों के बँगलों पर चढ़ाई कर दी। अंग्रेज भागकर आरा के किले में छिप गये। कुँवर सिंह ने किले को चारों ओर से घेर लिया।

अंग्रेजों की रक्षा के लिए, कप्तान डनवर गोरी सेना के साथ दाना-पुर से आरा पहुंचा। जिस समय वह किले की ओर बढ़ते समय एक आम के बगीचे से होकर गुजर रहा था, उस समय रात थी। रात के अँधेरे में ही कुँवर सिंह ने उस पर धावा बाल दिया।

दोनों ओर से गोलियाँ बरसने लगीं। कप्तान डनवर मारे गये और उनकी सेना के केवल पचास सिपाही ही भाग कर दानापुर पहुँच पाये। कुँवर सिंह के हाथों में काफो बन्दूके आ गईं!

उसके पश्चात् तोपों सहित एक विशाल सेना को लेकर मेजर आयर कुँवर सिंह के सामने पहुँचे; बीबीगञ्ज में घमासान लड़ाई छिड़ गई। कुँवर सिंह रणोन्मत्त अपने शत्रुओं का सिर उतारने लगे। बुढ़ापे में उनकी वीरता और शौर्य देख शत्रु और मित्र चकित रह गये।

कुँवरसिंह की वीरता से आतंकित मेजर आयर ने अपनी पराजय

निकट देख एक चाल चली। अपने कुछ सैनिकों द्वारा उसने पीछे से आक्रमण करा दिया। कुंवरसिंह के सैनिकों को यह विश्वास हो गया कि मेजर आयर की सहायता के लिए नयी पलटन आ गई। पहले से ही मेजर आयर के सैनिकों की संख्या विद्रोहियों से कईगुनो अधिक थी। विद्रोहियो ने कुंवरसिंह को मैदान छोड़ने के लिए विवश कर दिया। व्यर्थ जान गंवाने से, नयीशक्ति सचय करने के लिए हट जाना ही उचित समझ कुंवरसिंह जगदीशपुर की ओर बढ़े।

मेजर आयर अपनी सेना के साथ जगदीशपुर पहुँच गया। वह चतुर मेजर कुंवरसिंह को सैनिक सगठन के लिए अवसर नहीं देना चाहता था।

कई दिनों तक भयङ्कर लड़ाई हुई। कुंवरसिंह ने शत्रुओं की लाशों की ढेर लगा दी, किन्तु अंग्रेजों की सख्या उसके बाद भी विद्रोहियों से कई गुनी अधिक रही। कुंवरसिंह को सैनिक बढ़ाने का अवसर नहीं मिला था और अंग्रेजो की तोपों की मार से विद्रोहियों के पक्ष को काफी क्षति पहुँची थी। कुंवर सिंह ने अपने परिवार की स्त्रियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया और सैनिक-संठगन के लिए जगदीशपुर त्याग दिया।

उसके पश्चात् आजमगढ़ के पास एक मैदान में अंग्रेजी सेना से उनकी मुठभेड़ हुई। सैकड़ों अग्रेज सैनिको के सिर उतार कर कुंवरसिंह अपने सैनिको के साथ गायब हो गये। एक ग्राम के बगीचे में, कुंवरसिंह पर विजय प्राप्त करने की खुशी मे जब अंग्रेज सैनिक खा-पी रहे थे, अकस्मात् कुंवरसिंह अपने सैनिकों के साथ उनपर भूखे शेर की तरह टूट पड़े।

आकस्मिक आक्रमण से घबड़ा कर अधिकांश अग्रेज सैनिक भागने लगे। कुछ ने जो बन्दूकें उठायीं तो कुंवरसिंह और उनके सैनिकों ने उनके सिर उड़ा दिए।

कुँवरसिंह ने अंग्रेजों के भागने के कारण छुटे सामानों पर अधिकार किया। इस लड़ाई में दो तोपें गोला बारूद के साथ, हाथ लगीं।

उसके बाद कर्नल डेम्स ने आजमगढ़ के पास ही कुँवर सिंह से मोर्चा लिया। रणोन्माद से भरे कुँवर सिंह ने कर्नल डेम्स की सेना के दाँत खट्टे कर दिये। आक्रमणकारियों के खून से वे नहा गये। उनके सैनिकों ने शत्रुओं के रक्त से जी भर होली खेली। कर्नल डेम्स किसी तरह भाग कर अपने प्राण बचाये।

कुँवरसिंह ने विजयी सेना के साथ आजमगढ़ में प्रवेश किया और उसे स्वतन्त्र कर, बनारस की ओर बढ़े। बनारस में लखनऊ के विद्रोही भी उनके साथ हो गये।

लार्ड मार्क सेना लेकर, वहाँ पहुंचे। घमासान लड़ाई हुई। कुँवर सिंह ने महाराणा प्रताप की तरह रौद्ररूप धारण किये लार्ड मार्क की सेना को रौंद डाला। लाशों से धरती पट गई। लहू की धार बह चली। लार्ड मार्क भी कर्नल डेम्स की तरह प्राण बचा कर, भाग गये।

आजमगढ़ शहर पर कुँवरसिंह के सैनिकों का अधिकार था, किन्तु वहाँ का किला उनके अधिकार में नहीं आया था। कुँवरसिंह आजमगढ़ पहुँचे। किले के चारों ओर घेरा डलवा दिया। किले में लार्ड मार्क अपने भागे हुए सैनिकों के साथ छिपा हुआ लड़ाई की तैयारी में संलग्न था।

कुँवरसिंह को खबर मिली, लूगर्ड नामक एक अंग्रेज सेनापति एक बड़ी सेना के साथ उनका मुकाबला करने आ रहे हैं। कुँवरसिंह ने अपने कुछ वीर साथियों को लूगर्ड के प्रतिरोध के लिए एक पुल पर तैनात कर दिया जिधर से लूगर्ड की सेना आजमगढ़ आने वाली थी। स्वयं आजमगढ़ से अलग हट गये।

लूगर्ड की सेना को उनके वीर सैनिकों ने छक्के छुड़ा दिये। जब

लूगर्ड को पता लगा कि कुँवरसिंह बिहार लौट रहे हैं तो उसने कुँवर सिंह का पीछा किया।

कुँवरसिंह से उनके वीर सैनिक आ मिले। कुँवरसिंह ने लूगर्ड की सेना पर अकस्मात् बड़े वेग से आक्रमण कर दिया। लूगर्ड की सेना को कुँवरसिंह से पुनः लोहा लेने की हिम्मत न हुई। लूगर्ड अपनी सेना के साथ पीछे लौट पड़ा। कुँवरसिंह बिहार की ओर बढ़े।

बिहार पहुँचने का मुख्य उद्देश्य यह था कि कुँवरसिंह के अधिकार में उनका जगदीशपुर पुनः आ जाय और वहाँ से बिहार को अंग्रेजों के अधिकार से पूर्ण मुक्त कराने के लिए, लड़ाई लड़ी जाय।

अंग्रेजों को उनके इस संकल्प का पता लग गया। मिस्टर डगलस के अधीन एक बड़ी सेना कुँवरसिंह के पीछे चली। कुँवरसिंह को इसकी सूचना मिल गई। वे सचेत हो गये।

वीरवर कुँवरसिंह ने अपनी सेना को तीन भागों में बाँट दिया। एक भाग डगलस की सेना का मुकाबला करने के लिए बढ़ा और शेष दो भाग के सैनिक रास्ते के दाएँ-बाएँ अंग्रेजी पलटन की राह देखने लगे।

कुँवरसिंह के दल का पहला भाग डगलस की सेना से जा टकराया। डगलस की सेना परास्त हो भागने लगी। अचानक कुँवरसिंह के सैनिक शिथिल पड़ गये। वे पीछे हटने लगे।

डगलस की सेना का उत्साह बढ़ा। वह एकत्र होकर, कुँवरसिंह के सैनिकों का पीछा करने लगी। कुँवरसिंह के सैनिक अंग्रेजी सेना से लड़ते-भीड़ते पीछे हटते गये। वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कुँवरसिंह की सेना के शेष दो भाग थे। डगलस की सेना की हिम्मत पस्त हो गई जब दाएँ बाएँ से उन पर कुँवरसिंह के सैनिक शेर की तरह टूट पड़े।

डगलस की सेना के बहुत सैनिक मारे गये। उनके प्राण बच गये वो पीछे भाग गये।

कुँवरसिंह बड़ी तेजी से बिहार की ओर बढ़े। घाघरा नदी पार कर उनकी सेना विश्राम करने लगी। अचानक डगलस ने बड़ी सेना के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। डगलस अपने पीछे लौटे हुए सैनिकों को एकत्र कर, बड़ी सेना के साथ संगठित हो कुँवरसिंह की ओर बड़ी तेजी से बढ़ा था।

आकस्मिक आक्रमण के कारण, सेनापति डगलस ने कुँवरसिंह को क्षति पहुँचाने में सफलता प्राप्त की। उसके अधिकार में कुँवरसिंह का हाथी और कुछ भोजन-सामग्री आ गई।

कुँवरसिंह ने अपनी सेना के सैनिकों को कई ओर से गंगा के किनारे पहुँचने का आदेश दिया।

डगलस को सूचना मिली, कुँवरसिंह अपने सैनिकों के साथ बलिया के निकटतम घाट से गंगा पार करेंगे। प्रतिरोध के लिए अपनी सेना के साथ वह उसी घाट पर जम गया। लेकिन रात में उसे खबर मिली कुँवरसिंह की सेना, वहाँ से लगभग सात-आठ मील दूर, शिवघाट से गंगा पार कर रही है।

वह अपनी सेना के साथ बड़ी तेजी से शिवपुर पहुँच गया। उस समय तक कुँवर सिंह की सारी सेना गंगा पार कर चुकी थी। अपनी सेना को उस पार भेजकर, कुँवर सिंह एक नाव पर गंगा पार कर रहे थे। डगलस ने क्षणभर में अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। जिसकी वीरता के भय में सारी अंग्रेज सेना आतंकित थी, उस बूढ़े को धराशायी करने का यह सुअवसर उसे हाथ लगा था।

कुँवरसिंह उस समय गंगा के मध्य भाग में पहुँचे थे। अचानक उनके दाहिन हाथ की कलाई के ऊपर गोली लगी। गंगा की धार उस बूढ़े शेर को घायल होते देख क्षण भर के लिए रुक-सी गयी।

जहरीली गोली से सारे शरीर में विष फैलने की आशङ्का हुई और कुँवरसिंह ने बायें हाथ से तलवार उठायी और दाहिने हाथ के

भुजा के नीचे का भाग काट डाला। माँ गंगा ने अपने वीर पुत्र के दाहिने हाथ का टुकड़ा अपनी गोद में छिपा लिया।

गङ्गा पार होकर कुँवरसिंह जगदीशपुर पहुंचे। अपने छीने गये अधिकार को पुनः प्राप्त करने मे उन्हे अधिक कठिनाई नहीं हुई। उनके अनुज वीरवर अमरसिंह पहले से तैयार उनके आगमन की राह देख रहे थे।

कुँवरसिंह का दाहिना हाथ बेकार होने से अंग्रेजो को बड़ी खुशी हुई, किन्तु जगदीशपुर कुँवरसिंह के पुनः अधिकार में हो जाने से उनके कान खड़े हो गये।

कुँवरसिंह को जगदीशपुर पहुँचे बीस-पचीस घंटे भी नही गुजरे थे कि लीग्रैन्ड की अधीनता में आरा से कम्पनी की सेना पहुँच गई। कुँवरसिंह अपने कटे हाथ में दवा लगवा कर, विश्राम कर रहे थे। अग्रेजी सेना की खबर सुनते ही वे घायल शेर की तरह रणोन्मत्त हो उठे। अपने अनुज वीरवर अमरसिंह को उन्होंने आदेश दिया, 'एक भी लीग्रैन्ड के सैनिक बचकर जाने न पाए!'

अमरसिंह अपने बड़े भाई का आदेश पा सैनिकों के साथ लीग्रैन्ड की सेना के छक्के छुड़ाने के लिए बढ़े।

कुँवरसिंह के सैनिकों की संख्या एक हजार से अधिक न थी। उनमें अधिक लड़ते-लड़ते जख्मी और थके हुए थे। उनके पास एक भी तोप न थी।

लीग्रैन्ड की सेना के पास बड़ी-बड़ी तोपें थीं और वह आधुनिक हथियारों से अच्छी तरह सुसज्जित और सुव्यवस्थित थी। कुँवरसिंह के सैनिकों की संख्या से उनकी संख्या कई गुनी अधिक थी।

कुँवरसिंह घायल शेर की तरह मैदान में पहुँच गये और अपने सैनिकों का उत्साह बढाने लगे।

घमासान लड़ाई छिड गई। वीरवर अमरसिंह की वीरता और शौर्य

से लीग्रैन्ड के सैनिकों का साहस टूट गया। घोड़े पर सवार वह वीर जिधर निकलता, उधर उसकी पैनी तलवार लीग्रैन्ड के सैनिकों के मुण्डों की ढेर लगा देती।

कुँवरसिंह के सैनिक, बूढ़े घायल शेर के जोश दिलाने वाले शब्दों से, साक्षात् काल बन गये थे। उन्हें अपने प्राणों का तनिक मोह न था, किन्तु एक ही लक्ष्य था कि जितना शीघ्र हो शत्रुओं की गरदन काट डालो। वे शत्रुओं के रक्त से नहा कर विकराल बन गये थे।

लीग्रैन्ड की सेना कुँवरसिंह के बलि के मतवाले सैनिकों का विकराल रूप देख घबरा गई। अमरसिंह गाजर मूली की तरह शत्रुओं को काट रहे थे। लीग्रैन्ड और उनके अफसर लाख प्रयत्न करते रहे, किन्तु उनके भागते हुए सैनिक रुके नहीं। किसी ने जंगल की राह पकड़ी तो कोई पेड़ की ओट में कुँवरसिंह के सैनिकों की निगाह बचाता भाग चला। बदहवासी में जिसको जो राह मिली उधर से ही भाग निकला।

लीग्रैण्ड को गोली लगी और वे वहीं मर गये।

कुँवरसिंह के सैनिकों के साथ अमरसिंह ने भागते सैनिकों का पीछा किया। उन्हें कुवरसिंह के आदेश का पालन करना था. 'लीग्रैण्ड के एक भी सैनिक बचकर जाने न पाए!'

जो भाग न सके, उन्हें दो-दो टुकड़े कर, वे लीग्रैण्ड की सेना के खून के प्यासे, भागने वालों के पीछे पड़े। जो जहाँ मिला उसे वहीं समाप्त कर, वे आगे बढ़े।

अप्रैल मास की तेज धूप में दौड़ते-दौड़ते अंग्रेजों की बुरी हालत थी। वे बुरी तरह हाँफ रहे थे। जो कुँवरसिंह के सैनिकों की निगाह से बच निकले उनमें अधिकांश घबड़ाहट, गर्मी और प्यास से तड़पकर निश्चित स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही मर गये।

कुँवरसिंह के अधिकार में अंग्रेजी सेना की कुल तोपें और काफी अस्त्र-शस्त्र आ गये जिन्हें लीग्रैण्ड के सैनिक भागते समय छोड़ गए थे।

हाथ का घाव भरा नहीं। उपर्युक्त युद्ध के बाद एक सप्ताह के भीतर ही (२६ अप्रैल ५८ को) बिहार का वह प्रबल पराक्रमी बूढ़ा शेर, भारत का गौरव कुंवरसिंह अपने भवन पर स्वाधीनता का झण्डा फहराते देख सदा के लिए चल बसा।

O भारत का पड़ोसी देश : नेपाल

—बोलो, बोलो, एक बार फिर पुरुष सिंह, तुम शाक्य उठो !
महावीर औ' चन्द्रगुप्त लो धनुष, वीर चाणक्य उठो !
वीर सिकन्दर का मद मर्दन-कारी जय, पुरुराज उठो !
यवनों, हूणों और शकों के विजयी विक्रम, आज उठो !
—तुम जागो तो जगे अजन्ता और अलोरा की वाणी,
वैशाली, नालन्दा जागे, कला—भारती कल्याणी।
ऋषि-मुनियों की त्याग-तपस्या, पुण्य त्रिवेणी-तीर जगे।
—आरसी प्रसाद सिंह

भारत के उत्तर-पश्चिम में नेपाल है जिसके उत्तर में तिब्बत और पूर्व में भारत का संरक्षित राज्य सिक्किम है जिससे भारत के पश्चिमी बंगाल की सीमा मिलती है।

स्वर्ण-प्रतिमा है। मन्दिर में पहुँचने के लिए पाँच सौ सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती है।

नेपाल के वर्त्तमान नरेश महाराजा महेन्द्र वीर विक्रम शाह देव हैं जो विद्यानुरागी, संगीतप्रेमी और कवि हैं। उन्हें अपनी प्रजा से आत्मीयता है। उनकी कविताओं में जनता का सुख-दुख ही सीमित नहीं, किन्तु प्रकृति का सौन्दर्य भी झाँकता है।

—आकाश पर झीने बादलों का आवरण है,
और सन्ध्या पर सुनहरी चादर,
चाँदनी रात शांति बिखेरती है
नदी कल-कल स्वर से गाती है।
दोनों ओर हरे-भरे पर्वत खड़े हैं,
निर्मल स्वच्छ झरने हैं,
हिमालय की गर्वोन्नत चोटियाँ,
चाँदी के किरीट धारण किये हैं।
लाल पगडण्डियाँ
शान से पहाड़ी पर बल खाती जाती हैं,
पहाड़ी के नीचे पथरीली सड़क,
सूर्य की किरणों में चमक रही हैं।

महारानी रत्ना देवी भी एक विदुषी महिला हैं। महाराजा महेन्द्र को अपने राज्य-कार्यों में उनसे बहुत प्रेरणा मिलती है।

भारतीय जनता को महाराज महेन्द्र पर पूर्ण विश्वास है कि वे भारत और नेपाल की मित्रता कभी टूटने न देंगे!

भारतीय जनता नेपाल की ऋणी है जिसने भारत के प्राचीन साहित्यिक हस्त लिखित ग्रंथों को सँभाल कर रखा।

जब विदेशी आक्रमणकारियों ने भारतीय ग्रन्थों के संग्रहालयों को नष्ट भ्रष्ट करना, जलाना आरम्भ किया तब भारतीय-साहित्य के

प्रेमियों ने प्राचीन ग्रन्थों को लेकर नेपाल और तिब्बत में ही शरण ली थी।

नेपाल में प्राचीन हस्तलिपियाँ बहुत हैं जिनमें वाल्मीकि रामायण की बहुत पुरानी पांडुलिपि भी है। ये पांडुलिपियाँ राजकीय व्यक्तिगत संग्रहालय के अतिरिक्त राष्ट्रीय पुस्तकालय और वीर पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

महाराज महेन्द्र और महारानी रत्ना

भारत और नेपाल में प्रागैतिहासिक काल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पुराणों और प्राचीन ग्रन्थों में नेपाल का जिक्र है। सीताजी का जन्मस्थान नेपाल में आधुनिक जनकपुर माना जाता है। नेपाल के रायों और लिम्बुओं के पुरखों, किरातों का भी वैदिक साहित्य में कई जगह जिक्र आया है।

गौतम बुद्धका जन्मस्थान भी लुम्बिनी नेपाल की तराई में है। काठमांडू से २० मील पूर्व नमुरा में एक स्तूप है जो भगवान् बुद्ध की यात्रा का स्मारक बताया जाता है।

मौर्यकाल में (ईसा पूर्व ३ शताब्दी) नेपाल में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। सम्राट् अशोक ने अपनी नेपाल-यात्रा के दौरान पाटन में चार चैत्य बनवाये और लुम्बिनी में एक स्तम्भ बनवाया। उनकी पुत्री चारुमती का नेपाल के एक राजकुमार से विवाह हुआ!

गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छविवंश की कुमारदेवी से हुआ था। लिच्छवि लोगों का राज्य आधुनिक बिहार से नेपाल तक फैला हुआ था। इस काल में नेपाल में शैव धर्म और विक्रम संवत् का प्रचार हुआ। कहा जाता है कि जगद्गुरु शंकराचार्य नेपाल में भी गये थे।

१३वीं शताब्दी के आस-पास, मुसलमान-आक्रमण के कारण हजारों ब्राह्मणों और राजपूतों ने भारत से भाग कर नेपाल में शरण ली। १३०३ में मेवाड़ के राजपूतों की एक शाखा मध्य नेपाल में जाकर बसी थी। धीरे-धीरे ये लोग गोरखनाथ प्रदेश में फैल गये और १५५९ में 'गोरखा' इनकी राजधानी बनी। अतः ये लोग गोरखा कहलाने लगे। १७७६ में इस वंश के राजा पृथ्वीनारायण शाह ने अपने राज्य का विस्तार किया और वह सारे नेपाल तथा भारत के कुछ भागों, तराई, कुमाऊँ, गढ़वाल, शिमला और सिक्किम के भी राजा बन गये।

सन् १७९३ में नेपाल और ईस्टइण्डिया कम्पनी के बीच एक व्यापार समझौता हुआ। १७८८-९४ में तिब्बत को लेकर चीन से नेपाल की लड़ाई हुई। इसमें [illegible] रत से सहायता माँगी थी। उस समय भारत के गवर्नर [illegible] लिस ने सहायता तो न

दी, कर्नल किर्कपैट्रिक को मध्यस्थ बनाकर भेजा और नेपाल तथा चीन में सन्धि हुई।

भीमसेन थापा ने, जो १८०६ में नेपाल के प्रधान मंत्री बने, नेपाल की दक्षिणी सीमा को बढ़ाया और गोरखपुर के पास २०० गाँवों पर कब्जा किया। इसपर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और नेपाल के बीच १ नवम्बर, १८१४ को युद्ध ठना। २८ नवम्बर, १८१५ को, सुगौली की सन्धि से लड़ाई समाप्त हुई। इसके अन्तर्गत नेपाल को कुमाऊँ, गढ़वाल और पश्चिम के अन्य पहाड़ी क्षेत्र, सिक्किम और काली नदी के पश्चिम में तराई क्षेत्र ब्रिटिश शासन को देना पड़ा। १८१६ में एक अन्य सन्धि हुई, जिससे तराई का क्षेत्र नेपाल को लौटा दिया गया और इसके बदले नेपाल ने कम्पनी को २० हजार रुपये प्रति वर्ष देना स्वीकार किया। १८४६ में राणा जगबहादुर नेपाल के प्रधान मन्त्री बने। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से मित्रता बढ़ायी। उन्होंने १८५७ की क्रान्ति के समय ब्रिटिश शासन की सहायता की। फलतः १८६० में ब्रिटिश सरकार ने तराई का शेष भाग भी नेपाल को लौटा दिया।

प्रथम विश्व युद्ध में नेपाल ने ब्रिटिश सरकार को गोरखा सैनिक दिये। युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने नेपाल का सेना के सुधार के लिए प्रति वर्ष १० लाख रुपया देना स्वीकार किया।

सन् १६२३ में सुगौली सन्धि की पुनः पुष्टि हुई, जिसमें नेपाल को पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार की गयी। उसे बे-रोक-टोक भारत से होकर, सामान, हथियार, गोला-बारूद, मशीन आदि आयात करने का अधिकार दिया गया।

स्वतन्त्र भारत और नेपाल

पहले नेपाल के वैदेशिक सम्बन्ध, भारत की ब्रिटिश सरकार ही नियंत्रित करती थी, अब भारत ने नेपाल को वैदेशिक सम्बन्ध में भी पूर्ण स्वतन्त्र माना और उसने अमेरिका तथा रूस से राजनयिक सम्बन्ध भी स्थापित किया। नेपाल के कहने पर उसको अपना नया संविधान तैयार करने में सहायता देने के लिए भारत ने श्री श्रीप्रकाश को वहाँ भेजा।

फरवरी १६५० के तीसरे सप्ताह में नेपाल के प्रधान मन्त्री महाराजा मोहन शमशेर जंगबहादुर राणा दोनों देशों के बीच नयी संधि की बात करने के लिए दिल्ली आये तथा ३१ जुलाई १६५० को काठमांडू में मित्रता और व्यापार की संधि हुई।

शांति और मित्रता की सन्धि में दोनों देशों की पूर्ण प्रभुसत्ता, प्रादेशिक अखंडता और स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया। इसमें यह भी कहा गया कि अगर उभय देशों में से किसी का पड़ोसी राज्य से कोई विवाद हुआ, जिसके कारण मित्रता का सम्बन्ध टूटने का अंदेशा हो तो वह दूसरे को इसकी सूचना देगा। नेपाल को भारत होकर शस्त्रास्त्र आदि आयात करने की सुविधा दी गयी और दोनों सरकारों ने उभय देश के नागरिकों को अपने यहाँ उद्योग आर्थिक विकास के काम करने की छूट तथा अपने नागरिकों के समान अधिकार दिये। इस सन्धिपत्र से संलग्न पत्रों में यह भी कहा गया कि उभय देश अपने में से किसी पर विदेशी आक्रमण के खतरे को सहन नहीं करेंगे और उसका सामना करने के लिए आपस में सलाह और उपयुक्त उपाय करेंगे।

व्यापार संधि

व्यापार और वाणिज्य संधि में भारत ने नेपाल को अपने प्रदेश और बन्दरगाहों से होकर बेरोकटोक सामान मंगाने और भेजने का अधिकार दिया। दोनों ने एक दूसरे को जरूरी समान भी देना

मंजूर किया, व्यापारियों को आयात-निर्यात की पूरी सुविधाएँ और दोनों के असैनिक विमानों को एक दूसरे के प्रदेश पर उड़ने की इजाजत भी दी गयी। संधि में यह व्यवस्था भी की गयी कि नेपाल अपने आयात-निर्यात की वस्तुओं पर भारत में लगे सीमा शुल्क से नीची दर से शुल्क न लगायेगा और अपने यहाँ के बने माल पर भारत के उत्पादन शुल्क से कम शुल्क न लेगा ताकि भारत के विदेशी और आन्तरिक व्यापार को हानि न हो। यह संधि शुरू में दस साल के लिए की गयी।

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने १७ मार्च १६५० को नेपाल-भारत सम्बन्धों के बारे में कहा—'भारत और नेपाल के हित एक हैं। भारत सरकार नेपाल पर कोई आक्रमण नहीं सहन कर सकती, भले ही हमारे बीच कोई सैनिक संधि न हो। नेपाल पर किसी भी आक्रमण से भारत को भी खतरा होगा। हमने नेपाल सरकार को अपने यहाँ लोकतन्त्री व्यवस्था रखने की सलाह दी है पर हमने नेपाल के आन्तरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया।'

नवम्बर, १६५० में नेपाल में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। ६ नवम्बर को नेपाल नरेश महाराजा त्रिभुवन वीर विक्रम शाह अपने महल से निकल आये और ११ नवम्बर को दिल्ली आये। नेपाली कांग्रेस ने राणाओं के शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया। महाराज त्रिभुवन राणाशाही को समाप्त करना चाहते थे। भारत सरकार ने उनका समर्थन किया और राणाओं को उनसे बात करने को मजबूर किया। भारत सरकार की कोशिश से ऐसा समझौता हुआ जो नेपाल नरेश, राणा लोग और नेपाली कांग्रेस को मंजूर था। इसके फलस्वरूप महाराजा १५ फरवरी, १६५१ को काठमाडू लौटे। ४ जुलाई, १६५२ को महाराजा त्रिभुवन ने घोषित किया कि

नेपाल और भारत में पूरी मित्रता और सहमति है। उन्होंने भारत से घनिष्ठता बनाये रखी और सितम्बर, १९५२ में पुनः भारत आये।

१९५२ के शुरू में नेपाल नरेश ने नेपाली सेना का आधुनिकीकरण करने के लिए भारत से सैनिक अधिकारी माँगे। ७ अप्रैल, १९५२ को भारतीय प्रतिनिधिमण्डल काठमांडू पहुँचा। इसकी सहायता से नेपाली सेना का पुनस्संघटन हुआ।

नेपाल ने अपने शासन के सुधार तथा आर्थिक उन्नति के लिए भी भारत से सहायता माँगी। इसपर भारत ने कुछ शासन और आर्थिक विशेषज्ञ भेजना मंजूर किया। भारत ने नेपाल के आर्थिक विकास के लिए ऋण देना भी स्वीकार किया।

त्रिभुवन राजपथ

भारत ने काठमांडू में गौचर हवाई अड्डे के विस्तार और रक्सौल (भारत) से काठमांडूतक सड़क (त्रिभुवन राजपथ) बनाने का खर्च उठाना स्वीकार किया। मार्च १९६२ तक भारत ने हवाई अड्डे पर ७० लाख ४० हजार रुपया और त्रिभुवन राजपथ पर ७ करोड़ १३ लाख रुपया खर्च किया। इन ७९ मील लम्बी सड़क का नाम त्रिभुवन राजपथ है। और इसका निर्माण १९५२ में शुरू हुआ था। सड़क ११ दिसम्बर, १९५३ को चालू हो गई। औपचारिक रूपसे २० जून १९५७ को यह महाराजा महेन्द्रको समर्पित की गयी। उन्होंने इसे भारत और नेपाल की पुरानी मित्रता का प्रतीक कहा। यह सड़क काठमांडू को अमलेखगंज रेलस्टेशन से मिलाती है। अमलेखगंज नेपाल की रेल लाइन का आखिरी स्टेशन है। यह रेल लाइन ३० मील लम्बी है और भारतीय सीमा पर स्थित रक्सौल को अमलेखगज से जोड़ती है। त्रिभुवन राजपथ सड़क-इंजीनियरी का चमत्कार समझा जाता है। सड़क नौबीसी और पालुग की उर्वर घाटी से

होकर जाती है। इससे नेपाल की आर्थिक उन्नति में बड़ी सहायता मिलेगी।

भारतीय सहायता

२५ जुलाई १९५३ को नेपाल के प्रधान मंत्री श्री एम० पी० कोइराला ने घोषणा की कि कोलम्बो योजना के अन्तर्गत नेपाल को भारत ५ साल तक सिंचाई के कामों के लिए १० लाख रुपया अनुदान देगा। इसके अलावा नेपाल में भारतीय और विदेशी आयात पर भारत जो उत्पादन शुल्क लगाता है, वह नेपाल सरकार को दे दिया जायगा। इससे नेपाल की प्रति वर्ष ३० से ४० लाख रु० तक की आय होगी।

जुलाई, १९५४ में भारत ने कोलम्बो योजना के अन्तर्गत अगले ४ वर्षों में, नेपाल में सड़क और सचार, सिंचाई, बिजली और पानी योजनाओं के लिए ५० लाख रु० देना मंजूर किया।

राजा त्रिभुवन की मृत्यु के बाद महेन्द्र वीर विक्रम शाह नेपाल की गद्दीपर बैठे। वे ६ नवम्बर, १९५५ को भारत आये। भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उनको आश्वासन दिया कि नेपाल को भारत हरसम्भव सहायता देगा। नेपालनरेश ने मां भारत से विदा होते समय दोनों देशों की मित्रता का समर्थन किया और कहा कि मैं भारत को अपना परम मित्र और शुभेच्छु समझता हूँ।

१९५२ से १९५५-५६ के अन्त तक भारत ने नेपाल के आर्थिक विकास में ४॥ करोड़ रुपये की सहायता दी। इसमें त्रिभुवन राजपथ के लिए २.३५ करोड़, डाक्टरी सहायता और धान के उर्वरक में ४२ लाख रुपये, गौचर हवाई अड्डे के निर्माण में ३८ लाख, सर्वे के लिए ३७ लाख और छोटी सिंचाई तथा पानी के लिए ७ लाख रुपये दिये गये।

१९५६ में काठमाण्डू में भारतीय सहायता मिशन का कार्यालय

खोला गया। उसी साल अगस्त में भारत सरकार ने नेपाल की ३३ करोड़ रुपये की पहली पंचवर्षीय योजना में दस करोड़ रुपये तक की सहायता, शिल्पिक सहयोग और खेती की जिंसों के रूप में देने को कहा।

दिसम्बर, १९५६ में नेपाल के प्रधान मंत्री श्री टंक प्रसाद आचार्य भारत आये। नेहरूजी ने उनसे कहा कि भारत नेपाल की स्वतंत्रता और समृद्धि चाहता है।

जनवरी, १९५८ में नेपाल, भारत और अमेरिका ने पाँच वर्ष में नेपाल में ९०० मील सड़क बनाने का समझौता किया। इस पर कुल ५ करोड़ रुपये खर्च होने थे जिसका २५ प्रतिशत भारत के जिम्मे शिल्पिक सहायता और कर्मचारियों के रूप में था। किन्तु समझौते की अवधि में केवल ३०० मील सड़क ही बन पायी। नेपाल भारत और अमेरिका को इस सम्बन्ध से अलग-अलग समझौता करेगा। २६ जून, १९५८ को इन तीनों देशों में, काठमांडू में १५०० लाइन की स्वचालित टेलीफोन प्रणाली बनाने का समझौता हुआ। इसी साल २० नवम्बर को भारत ने त्रिशूली (नेपाल) में पनबिजली घर बनाने का समझौता किया। इसमें १८ हजार किलोवाट बिजली बननी थी और भारत को कुल २ करोड़ ४५ लाख रुपया खर्च करना था।

श्री नेहरू की नेपाल-यात्रा

जून, १९५९ में श्री नेहरू नेपाल गये। उन्होंने वहाँ घोषित किया कि भारत और नेपाल में न कोई मतभेद है और न होगा। तिब्बत के मामले में दोनों देशों का रुख एक-सा है। नेपाल के गृहमन्त्री श्री उपाध्याय ने तिब्बत के मामले में भारत के संयम की सराहना की। यात्रा के अन्त में संयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया कि भारत नेपाल को अपने योजना के अनुभव से लाभ पहुँचाना चाहता है। भौगो-

लिक समीपता के कारण कुछ योजनाएँ दोनों को मिलकर चलानी चाहिये और कोसी-गण्डक योजनाओं में दोनों देशों के सहयोग का निश्चय हुआ।

४ दिसम्बर, १९५६ को भारत और नेपाल में सिंचाई और बिजली योजना के बारे में समझौता हुआ। कोसी योजना का काम ३१ मार्च, १९६३ को पूरा हुआ, जो दोनों देशों के सहयोग का प्रतीक है। केवल नेपाल के अन्दर नहरें बनाने में भी भारत ने वित्तीय सहायता का आश्वासन दिया है। २० हजार किलोवाट पनबिजली योजना भी मंजूर की जा चुकी है जिसकी आधी बिजली नेपाल को मिलेगी।

नेपाली सीमा पर चीनी सेनाओं के जमाव पर २७ नवम्बर, १९५९ को श्री नेहरू ने लोकसभा में कहा था कि नेपाल या भूटान पर कोई भी आक्रमण भारत पर आक्रमण माना जायगा। ३ दिसम्बर को नेहरू जी ने इस बात के स्पष्टीकरण में कहा कि भारत के लिए इसमें कोई एकतरफा कारवाई करने का प्रश्न नहीं है। हम मित्र के नाते संकटकाल में एक दूसरे की सहायता करेंगे।

नया व्यापार समझौता

नेपाल की आर्थिक उन्नति में भारत की सहायता जारी रही। नेपाल का विदेशी व्यापार बढ़ाने में भी भारत ने सुविधा देनी मंजूर की। नवम्बर, १९६० में दोनों देशों में नया व्यापार समझौता हुआ। इसके अन्तर्गत उभय देशों के माल पर सीमा-शुल्क और आयात आदि की छूट दी गयी।

१९६१ के आरम्भ तक भारत नेपाल को २८ करोड़ रुपये से अधिक की सहायता देना और मंजूर कर चुका है। इसमें से ४॥ करोड़ रुपया नेपाल की पहली योजना (१९५६) शुरू होने से पहले और

६ करोड़ रुपया जुलाई, १९६१ तक दिया गया और १२ करोड़ रुपये की दूसरी योजना के लिए आश्वासन दिया गया है। भारत ने त्रिभुवन विश्वविद्यालय के विकास इञ्जीनियरी स्कूल, उद्योगपुरी, वन संस्था की स्थापना, अस्पताल खोलने, हवाई पट्टियाँ बनाने, गाँव और नगरों के विकास और छोटी सिंचाई योजनाओं आदि में नेपाल को सहायता की है। इनके अलावा नेपालियों को भारत में काम सिखाने की सुविधा भी दी गई है।

अप्रैल १९६२ में महाराजा महेन्द्र की भारत की यात्रा के दौरान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने स्पष्ट कहा कि हम नेपाल के आन्तरिक मामलों में कत्तई हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि नेपाल अपने ढंग से उन्नति करे। दोनों देशों में जो छोटे-मोटे मतभेद हों, उनकी उपेक्षा की जानी चाहिये। दोनों देश एक दूसरे की सुरक्षा, स्वतन्त्रता और अखण्डता चाहते हैं। संयुक्त विज्ञप्ति में बताया गया कि नेहरूजी ने नेपालनरेश को आश्वासन दिया कि हम नेपाल की उन्नति और समृद्धि चाहते हैं और भारत सरकार गैरकानूनी और हिंसात्मक कार्रवाइयों के खिलाफ है। श्री नेहरू और नेपालनरेश दोनों ने कहा कि जब कभी किसी बात पर मतभेद हो तो दोनों सरकारें आपस में बातचीत करें।

नेपालनरेश की दिल्ली यात्रा के बाद, भारत-नेपाल-सीमा पर नेपाली विद्रोहियों ने कुछ हिंसात्मक कार्रवाई की जिससे दोनों देशों में कुछ गलतफहमी पैदा हुई। किन्तु भारत पर चीनी आक्रमण के बाद २४ अक्टूबर, १९६२ को नेपाल के विदेशमन्त्री डाक्टर तुलसी गिरि ने कहा कि नेपाल को इससे बड़ी चिन्ता हुई है। नेपाल में कोई भी समझदार आदमी भारत नेपाल मित्रता के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं करेगा, क्योंकि भारत से बिगाड़ करके हमें कोई फायदा नहीं हो सकता। नेपाली कांग्रेस ने भी भारत-नेपाल सीमा पर अपनी

कार्रवाई बन्द करने की घोषणा की और इससे दोनों देशों के सम्बन्ध और सुधरे। सितम्बर, १९६२ में डाक्टर तुलसी गिरि दिल्ली आये और उन्होंने कहा कि भारत और नेपाल में कोई बुनियादी मतभेद नहीं है। २७ जनवरी, १९६३ को लखनऊ में महाराजा महेन्द्र ने भी कहा कि भारत और नेपाल के सम्बन्ध बराबर सुधर रहे हैं। १२ फरवरी, १९६३ को नेपाली राजदूत श्री यदुनाथ कन्हल ने भी नयी दिल्ली में कहा कि भारत और नेपाल के सम्बन्ध पहले से बहुत अच्छे हैं, और हम चाहते हैं कि और भी अच्छे हों।

• महाराजा महेन्द्र के निमन्त्रण पर मार्च १९६३ में भारत के गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री नेपाल गये। यात्रा के अन्त में संयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया कि भारत और नेपाल के बीच अटूट भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सम्बन्ध है, दोनों का हित एक दूसरे से बंधा है। निश्चय हुआ कि समय-समय पर दोनों देशों में आपसी बातचीत चलती रहनी चाहिये। श्री लालबहादुर ने स्पष्ट किया कि भारत नेपाल का हृदय से भला चाहता है। नेपाल में होनेवाले संयुक्त आर्थिक कार्यक्रमों और उनमें आनेवाली दिक्कतों को दूर करने पर भी विचार हुआ और कुछ निर्णय किये गये।

शास्त्रीजी ने पत्र प्रतिनिधि-सम्मेलन में कहा कि दोनों देश अपनी मित्रता को बढ़ाना चाहते हैं। उन्होंने अपने दोनों देशों के समाचार पत्रों से कहा कि वे मित्रता बढ़ाने में सहयोग दें। उन्होंने कहा कि नेपाल के आर्थिक विकास में भारत जो प्रयत्न कर रहा है, उसे सहायता नहीं बल्कि एक भाई से दूसरे भाई का सहयोग समझना चाहिये।

२५ जून, १९६३ को फिर महाराजा महेन्द्र ने भी एक पत्रकार से भेंट में कहा कि भारत और नेपाल के सम्बन्ध सुधरते जा रहे हैं

नेपालकी विकास योजनाओं में भारत के सहयोग को और बढ़ाने का निश्चय हुआ। भारत ने १२८ मीलकी सुगौली पोखरा सड़क (प्रारम्भिक खर्च २ करोड़ ७७लाख रुपये), बागमती नदी पर काठमांडू में एक पुल (१ लाख १५ हजार रुपये, और काठमाडू-बलाज सड़क (१६ लाख रुपये) के निर्माण में भी आर्थिक सहायता मंजूर की। सुगौली पोखरा सड़क के निर्माण में २८ पुल बनाने पड़ेंगे। यह सड़क उत्तरप्रदेश को नेपाल के पश्चिमी तथा मध्य भाग से जोड़ेगी, जिससे १४ लाख लोगों को लाभ होगा। बागमती पर पुल बनने से भी काठमांडू और आसपास के लोगों को यातायात की बड़ी सुविधा हो जायगी। संयुक्त विज्ञप्ति में आशा व्यक्ति की गयी कि दोनों देशों के बीच 'परम मित्र राष्ट्र' के आधार पर व्यापार बढ़ेगा। राजा महेन्द्र और श्री नेहरू ने यह भी निश्चय किया कि समय समय पर दोनों देशों के पदाधिकारी आपस से मिलते रहें।

—२६ अगस्त से नयी दिल्ली में नेपाली कला, दस्तकारी और चित्रों की एक प्रदर्शनी हुई। नेपाली कलाकारों की एक टोली ने भी भारत का भ्रमण किया।

१६ सितम्बर, १९६३ को प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने लोकसभा में कहा कि इस समय नेपाल के साथ हमारे सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं। हम एक दूसरे की बात समझते हैं और आपस के मामले में हस्तक्षेप नहीं करते। हम दोनों एक दूसरे की भलाई चाहते हैं।

१८ सितम्बर को छः भारतीय व्यापारी नेपाल गये। उन्होंने नेपाल के उद्योगों में भारतीय पूँजी लगाने के बारे में विचार किया। इस सम्बन्ध में कुछ और भारतीय विशेषज्ञों को नेपाल भेजने का विचार है।

भारत के राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् की (नवम्बर, ६३)

और हमारे बीच कोई स्थायी मतभेद नहीं रह सकता। मैं श्री नेहरू को बड़ा मानता हूँ।

जुलाई में भारतीय स्थलसेनाध्यक्ष जनरल चौधरी नेपाली सेनापति के निमन्त्रण पर नेपाल गये।

१० जुलाई, १९६३ को भारत ने काटमाण्डू त्रिशूल सड़क को बनाने और देखरेख करने के बारे में समझौता किया इसपर ५४ हजार नेपाली रुपये खर्च होंगे। भारत नेपाल में आठ हवाई अड्डे भी बना रहा है, जिनमें से दो बन चुके हैं। ये अड्डे सारे साल चालू रहेंगे।

२६ से ३० जुलाई तक दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने प्राशासनिक समस्याओं पर विचार किया और आगे भी इस प्रकार तिमाही बैठकें करने का निश्चय हुआ।

जुलाई-अगस्त में नेपाली प्रतिनिधियों ने भारत-नेपाल व्यापार के बारे में बातचीत की। भारत ने हर प्रकार की सहायता का वादा किया। भारत ने नेपाल के कहने पर पूर्व और पश्चिम में, दो स्थानों पर पाकिस्तान के आने-जानेवाले माल को भारतीय क्षेत्र से ले जाने की सुविधा देना स्वीकार किया। नेपाल ने भी भारतीय माल पर आयात और निर्यात शुल्क को ठीक करने का वादा किया।

काठमाण्डू में २५ अगस्त, १९६३ को भारतीय स्वतन्त्रता दिवस समारोह में नेपाल की राष्ट्रीय पञ्चायत के प्रधान श्री विश्वबन्धु थापा ने कहा कि भारत और नेपाल भाई-भाई हैं। अगर नेपाल से होकर किसी ने भारत पर आक्रमण करना चाहा, तो उसे नेपालियों की लाशों पर से गुजर कर जाना पड़ेगा।

नेपाल के महाराजा और रानी की हाल की भारत यात्रा से, दोनों देशों के सम्बन्ध और दृढ़ हुए हैं। नेपाल-नरेश ने भारत के नेताओं के साथ आपस के और विश्व के मामलों पर बातचीत की।

नेपालकी विकास योजनाओं में भारत के सहयोग को और बढ़ाने का निश्चय हुआ। भारत ने १२८ मीलकी सुगौली पोखरा सड़क (प्रारम्भिक खर्च २ करोड़ ७७लाख रुपये), बागमती नदी पर काठमांडू में एक पुल (१ लाख १५ हजार रुपये, और काठमाडू-बलाज सड़क (१६ लाख रुपये) के निर्माण में भी आर्थिक सहायता मंजूर की। सुगौली पोखरा सड़क के निर्माण में २८ पुल बनाने पड़ेंगे। यह सड़क उत्तरप्रदेश को नेपाल के पश्चिमी तथा मध्य भाग से जोड़ेगी, जिससे १४ लाख लोगों को लाभ होगा। बागमती पर पुल बनने से भी काठमांडू और आसपास के लोगों को यातायात की बड़ी सुविधा हो जायगी। संयुक्त विज्ञप्ति में आशा व्यक्ति की गयी कि दोनों देशों के बीच 'परम मित्र राष्ट्र' के आधार पर व्यापार बढ़ेगा। राजा महेन्द्र और श्री नेहरू ने यह भी निश्चय किया कि समय समय पर दोनों देशों के पदाधिकारी आपस से मिलते रहें।

—२६ अगस्त से नयी दिल्ली में नेपाली कला, दस्तकारी और चित्रों की एक प्रदर्शनी हुई। नेपाली कलाकारों की एक टोली ने भी भारत का भ्रमण किया।

१६ सितम्बर, १९६३ को प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने लोकसभा में कहा कि इस समय नेपाल के साथ हमारे सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं। हम एक दूसरे की बात समझते हैं और आपस के मामले में हस्तक्षेप नहीं करते। हम दोनों एक दूसरे की भलाई चाहते हैं।

१८ सितम्बर को छः भारतीय व्यापारी नेपाल गये। उन्होंने नेपाल के उद्योगों में भारतीय पूँजी लगाने के बारे में विचार किया। इस सम्बन्ध में कुछ और भारतीय विशेषज्ञों को नेपाल भेजने का विचार है।

भारत के राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् की, (नवम्बर, ६३)

नेपालयात्रा से भारत-नेपाल की मित्रता का बन्धन और मजबूत हो गया है। दोनों देश एक दूसरे के बहुत निकट आ गये हैं।

● भारत का उत्तरी सीमांत और तिब्बत

भारत का उत्तरी सीमान्त, जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के वर्त्त-मान गढ़वाल और कुमाऊँ के दो जिले आते हैं, अपनी भौगोलिक बनावट के कारण राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भले ही कम उन्नत रहा हो, किन्तु पुरातन भारत के सांस्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक अभ्युदय की दृष्टि से देश के किसी भी भू-भाग से उसका महत्त्व भी किसी तरह कम न रहा। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और शंकराचार्य जैसे महान् पुरुषों ने इस भूमि को अपना साधना क्षेत्र बनाया और अपनी अमर कृतियों में उसके गौरव एवं महत्व का मुक्तकण्ठ से उद्‌गायन किया। आज भी उन स्थलों का दर्शन करके सारा पुरातन सामने उपस्थित हो जाता है। वे दिव्यधाम हमारी संस्कृति के जीवित स्मारक हैं और अतीत के सहस्त्रों वर्षों से प्रकृति द्वारा ही उनको पोषण-संरक्षण मिलता रहा।

भारत के इस उत्तरी सीमान्त को जब हम राजनीतिक एवं ऐति-हासिक दृष्टि से गवेषणा करते हैं तो हमें विदित होता है कि इस सम्बन्ध में किसी निश्चित स्थिति पर पहुँचने के लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसका प्रमुख कारण रहा है उसकी भौगोलिक बनावट। हिमाच्छादित और सघन वनों से परिवेष्टित इस पर्वत्य भूमि पर किसी भी मनुष्य का छहों ऋतुओं में जीवनयापन सम्भव नहीं था। समय-समय पर दीर्घ व्यवधान के बाद जब कोई कबीला वहाँ गया तो स्थायी आवास की असुविधाओं के कारण उसको वह स्थान त्यागना पड़ा और इसीलिए अथवा किसी

बहुत आगे चलकर जब कि भारत में बौद्धधर्म का उदय हो चुका था, देश के इस उत्तरी सीमान्त के बारे में लिखे गये विवरण से यहाँ की स्थिति पर एक धुँधला प्रकाश पड़ता है। बौद्ध धर्म की जोत को उत्तरापथ की ओर ले जानेवाले सम्राट् अशोक द्वारा प्रेषित महास्थविरों ने कूर्मांचल (कुमायूँ) और केदार (गढ़वाल) के पर्वत-पथों को आलोकित करते हुए पहले नेपाल और उसके बाद तिब्बत में प्रवेश किया। नेपाल और तिब्बत की धरती तो उस महान् आलोक से जगमगाने लगी, किन्तु केदार और कूर्मांचल में ये आलोक चिह्न संरक्षण के अभाव में कुछ ही समय बाद मिट गये।

सम्राट् अशोक ने स्वयं नेपाल जाकर अपने साम्राज्य की उत्तरी सीमाओं को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित करने का यत्न किया। लुम्बिनी बौद्ध धर्म का सर्वोच्च तीर्थ है, अतः सम्राट् अशोक के गमनागमन का अधिक प्रभाव मध्य पूर्व की अपेक्षा उत्तर-पूर्व के भू भागों पर पड़ा।

सम्राट् अशोक के बाद शुङ्ग सातवाहनों और गुप्त-सम्राटों के समय देश के इस उत्तरी सीमात में पहले की अपेक्षा कुछ नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। गुप्त राजाओं के समय नेपाल भारत का ही अङ्ग था। सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ से ज्ञात होता है कि नेपाल के तत्कालीन लिच्छवी राजा वृषदेव ने कर देकर उनकी अधीनता को स्वीकार कर ली थी। केदार और कूर्मांचल पर भी गुप्त सम्राटों का ध्यान गया था। उनके भी अभिलेख इस भू-भाग में उपलब्ध होते हैं।

गुप्तों के बाद भारत का सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न सम्राट् हुआ हर्षवर्धन। सम्राट् हर्षवर्धन (६०५-६४७ ई०) के साम्राज्य में भारत की उत्तरी सीमाओं का इतिहास अधिक स्पष्ट एवं प्रामाणिक रूप में मिलता है। सम्राट् हर्ष उत्तरी भारत का अन्तिम चक्रवर्ती और थानेश्वर तथा कान्यकुब्ज का अधिपति था। उत्तर में हिमाचल

(केदार-कूर्मांचल) से लेकर सौराष्ट्र और गौड़ प्रदेश (बंगाल) तक उसका एक क्षत्र शासन था। उसके शासन-काल में भारत के सभी अंचलों में धार्मिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक उन्नति हुई।

इसी समय (७वीं श० ई० में) दक्षिण भारत में एक तेजस्वी प्रतिभा का उदय हुआ। इस ज्योतिपुञ्ज महामानव का नाम था शङ्कराचार्य। शङ्कराचार्य ही इस देश के एकमात्र महामनस्वी व्यक्ति हुए, जिन्होंने धार्मिक दिग्विजय करके सम्पूर्ण राष्ट्र में भावात्मक एकता स्थापित की। उन्होंने अपनी इस धार्मिक दिग्विजय की स्मृति में भारत के चारों धामों पर चार महान् स्मारक स्थापित किये, जो आज शङ्कराचार्य के मठों के रूप में प्राचीनकाल से भारतीय ज्ञान तथा धर्म की शृङ्खला को आगे बढ़ाते आ रहे हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित ये मठ राष्ट्रीय एकता के प्रतीक और इस दिशा में हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं जीवन का अन्तिम भाग उन्होंने केदारनाथ में बिताया और वहीं उन्होंने शरीर त्याग दिया। जोशीमठ में वर्त्तमान उनका पीठ या आश्रम आज भी उनके उत्तरापथ प्रेम की स्मृति को अमर बनाये है।

आचार्य शंकर के समान सम्राट् हर्ष का ही आदर्श रहा हो तो कोई असम्भव नहीं। हर्ष की मृत्यु (६४७ ई०) के बाद उसका वह विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर कई भागों में बँट गया। उत्तरी हिमालय का स्वामित्व मिला सम्राट् हर्ष के सेनापति भण्डी के वंशज राजा अर्जुन को। उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी सिद्ध हुआ तिब्बत का राजा स्रोङ्-बत्सन-स्गम-पो (६१७–६८८ ई०)। कुछ ही दिनों बाद इस तिब्बती राजा ने भारत के दुर्बल राजा अर्जुन को उखाड़ फेंका और उसको बन्दी बनाकर चीन भेज दिया।

तिब्बत के उक्त शक्तिशाली राजा ने सम्राट् हर्ष के दिग्विजय के आदर्शों पर अपने साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। उसने पश्चिम

में गिलगिट तक, उत्तर में तरिम् तथा ह्वांग्हो नामक उपत्यकाओं तक, पूर्व में 'चीनी प्रदेश तक और दक्षिण में सारे हिमालय पर अधिकार कर लिया। उसके समय में और उसके बाद भी लगभग २०० वर्षों तक आसाम से गिलगिट तक भारत का पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी सीमान्त तिब्बत के अधीन रहा।

हर्ष के २०० वर्ष बाद जब कि मगध पर राजा धर्मपाल के प्रतापी पुत्र देवपाल (८१५–८५४ ई०) का और कन्नौज पर राजा भोज प्रथम (८३६–८६२ ई०) का शासन था, हिमालय का उक्त विस्तृत भूभाग तिब्बत के चंगुल से निकलकर पुनः भारतीय शासन के अधीन हुआ। उसके प्रमाण मगधनरेश देवपाल के अभिलेखों में सुरक्षित हैं। राजा देवपाल के अभिलेखों में 'भोट' और 'लासत' शब्दों का प्रयोग यही सिद्ध करता है कि उसका शासन उत्तरी सीमान्त से आगे बढ़कर तिब्बत के लासा प्रदेश तक फैला हुआ था। उस समय तिब्बत पर राजा मु ने-वत्सन-पो (८४५–८४६ ई०) और उसके पुत्र रवील्दे-वत्सन पो (८४७–८७७ ई०) का शासन था। इन राजाओं के समय तिब्बत विद्रोह-विद्रोहाग्नि में बुरी तरह झुलस रहा था। फलस्वरूप उसके उत्तर में चीन तथा दक्षिण में भारत का प्रभुत्व बना रहा। तिब्बत तक मगध राज्य की पताका फैलाने का श्रेय था वत्सन्तन नामक एक शक्तिशाली सामरिक को जिसका इतिहास आगे प्रस्तुत किया गया है।

आज हमें आसाम से लेकर गिलगिट के विस्तृत सीमान्त क्षेत्र में लगभग डेढ़ लाख निवासियों की मुखाकृति में मंगोल स्वरूप दिखायी देता है। उसका कारण यही समय है, जब कि तिब्बत के साथ भारत का सम्बन्ध बनता और बिगड़ता रहा। इन सम्बन्धों के कारण दोनों देशों के सीमांतवासी लोगों में वैवाहिक रक्त सम्बन्ध होता रहा और वह रक्त आज तक बना हुआ है।

(केदार-कूर्माचल) से लेकर सौराष्ट्र और गौड़ प्रदेश (बंगाल) तक उसका एक क्षत्र शासन था। उसके शासन-काल में भारत के सभी अंचलों में धार्मिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक उन्नति हुई।

इसी समय (७वीं श० ई० में) दक्षिण भारत में एक तेजस्वी प्रतिभा का उदय हुआ। इस ज्योतिपुञ्ज महामानव का नाम था शङ्कराचार्य। शङ्कराचार्य ही इस देश के एकमात्र महामनस्वी व्यक्ति हुए, जिन्होंने धार्मिक दिग्विजय करके सम्पूर्ण राष्ट्र में भावात्मक एकता स्थापित की। उन्होंने अपनी इस धार्मिक दिग्विजय की स्मृति में भारत के चारों धामों पर चार महान् स्मारक स्थापित किये, जो आज शङ्कराचार्य के मठों के रूप में प्राचीनकाल से भारतीय ज्ञान तथा धर्म की शृङ्खला को आगे बढ़ाते आ रहे हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित ये मठ राष्ट्रीय एकता के प्रतीक और इस दिशा में हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं जीवन का अन्तिम भाग उन्होंने केदारनाथ में बिताया और वहीं उन्होंने शरीर त्याग दिया। जोशीमठ में वर्त्तमान उनका पीठ या आश्रम आज भी उनके उत्तरापथ प्रेम की स्मृति को अमर बनाये है।

जिस समय मगध पर राजा देवपाल और कन्नौज पर राजा भोज प्रथम का शासन था उसी समय (६ वीं श० ई० में) उत्तरी हिमालय में एक नये राजवंश का उदय हुआ। वह था कत्यूरी राजवंश। इस राजवंश का संस्थापक था सामरिक वसन्तन, जिसका समय ८५०–८७० ईस्वी के लगभग था। इस वसन्तन का ही अपर-नाम वासुदेव था। गढ़वाली तथा कुमाऊँनी परम्परा के अनुसार इसको कत्यूरी वंशका संस्थापक माना जाता है। अबतक जितने भी अभिलेख तथा दानपत्र मिले हैं उनमें वासुदेव नहीं वसन्तन नाम ही मिलता है। वसन्तन से लेकर इष्टगण (६३०–६४८ ई०) तक उत्तरी भारत का शासन प्रबन्ध इन्हीं कत्यूरी सामन्तों के हाथों में रहा। ये सामन्त प्रतीहार राजाओं के अधीन थे।

सामन्त इष्टगण के बाद उत्तरी हिमालय के शासन-प्रबन्ध का उत्तराधिकार मिला ललितशूर (६४५-६५० ईस्वी) को। उसने प्रतीहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम (६१४-६४५ ईस्वी) का सामन्त होना अस्वीकार कर दिया। ललितशूर के जा तीन अभिलेख जोशीमठ में रखे हुए हैं उनको देखकर स्पष्ट हो जाता है कि उसने प्रतीहार राजाओं का नाममात्र का सामन्ती पद छोड़कर उत्तर का शासन तन्त्र पूरे रूप में अपने हाथ में ले लिया। वह कत्यूरी वंश का सर्वाधिक प्रभावशाली राजा [illegible] पने वंशनाम से कार्तिकपुर (जोशीमठ) को अपनी रा[illegible]।

राजा ललितशूर ने अ[illegible] सीमा मानसरोवर तक बढ़ायी और तिब्बत तथा नेप[illegible]ा आतंक बढ़ाया। उसके बाद उत्तरी हिमालय की [illegible] रखा उसके भावी वंशज करते रहे।

इस पर्वतीय भू-भाग पर ८५० से १०६० ईसवी तक १३ कत्यूरी राजाओं का एकाधिकार बना रहा, पांडुकेश्वर, बागेश्वर और आले-

स्तर से प्राप्त उनके अभिलेखों में उनका वंशक्रम इस प्रकार दिया गया है—वसन्तन, खर्पर, श्रधिराज, त्रिभुवनराज, इष्टगण, ललितशूर, भूदेव, सलोणादित्य, इच्छट, देशट, पद्मट और सुभिक्षराज।

सुभिक्षराज ने कार्तिकपुर (जोशीमठ) राजधानीका सुभिक्षपुर नामकरण किया।

जैसा कि गढ़वाल कुमाऊँ की लोकपरम्पराओं से विदित होता है कि धीरदेव कत्यूरीवंश का अन्तिम शासक था, उससे यह जान पड़ता है कि वह राजा सुभिक्षराज के बाद हुआ। वह बड़ा क्रूर और अत्याचारी राजा हुआ। इसलिए कत्यूरों की वंशावली में उसका उल्लेख नहीं किया गया। उसके अन्त के साथ ही उत्तरी हिमालय का कत्यूरीवंश भी विच्छिन्न हो गया और वहाँ । शासन छोटी-छोटी ठकुराइयों में बँट गया।

इस अराजकता के कई दुष्परिणाम हुए। उसी के कारण गढ़वाल और कुमाऊँ सर्वथा अलग हो गये। उसका लाभ उठाकर दक्षिण तिब्बत के भोटिया ने चौरा श के गढ़ेश्वर राजाओं को पराजित करके धीरे-धीरे अपनी सीमाओं । बढ़ाया और केदारखण्ड का इलाका इन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। इन ब्राह्मणधर्मी गढ़राजाओं से बौद्ध धर्मानुयायी भोटिया लोगों की सदा ही द्वेष एवं शत्रुता बनी रही।

इस अराजकता के लगभग ढाई-तीन सौ वर्षों के बाद उत्तरी हिमालय में जिस सार्वभौम राज्य की प्रतिष्ठा हुई उसके संस्थापक थे पंवार। पवार राजवंश का संस्थापक यद्यपि महाराज कनकपाल को बताया जाता है फिर भी गढ़वाल की विच्छिन्न शासनसत्ता को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य किया महाराज अजयपाल ने जिसका शासनकाल १५ वीं श० ई० था। उसी के राज्यकाल में 'केदारखण्ड' का 'गढ़वाल' नामकरण हुआ और उसी के समय उत्तर में हिम

शिखरों तक, दक्षिण में हरिद्वार तक, पश्चिम में यमुना तक और पूर्व में बघाण तक गढ़राज्य की सीमाएँ फैलीं। उसने ही ५२ गढ़-राजाओं में एकता स्थापित करके उनकी जगह एक गढ़राज्य की स्थापना की। इसीलिए उसको प्रथम गढ़वाला (गढ़पति) कहा गया। उसकी लगभग १५ पीढ़ियों ने उत्तरी हिमालय पर एकछत्र शासन किया।

इन पंवारवंशीय राजाओं के साथ उत्तरी हिमालय के सीमान्त देशों, तिब्बत और चीन का सीमा के प्रश्नों को लेकर समय-समय पर संघर्ष होता रहा, किन्तु पंवारों के सुदृढ़ एवं शक्तिशाली शासन में उत्तर की सीमाएँ सदा सुरक्षित बनी रहीं। अराजकता के समय जिस भू-भाग पर तिब्बतियों ने अधिकार कर लिया था पंवार राजाओं ने पुनः उनको अपने अधिकार में किया।

इस प्रकार कत्यूरी वंश और पंवार वंश ने लगभग ११ सौ वर्षों तक उत्तरी हिमालय के जिस भू-भाग पर शासन किया, ब्रिटिश राज्य में उसी को मैकमहोन रेखा का आकार स्वीकार किया गया था। यद्यपि इस शासित प्रदेश की सीमाएँ और भी उत्तर की ओर बढ़ती थी, फिर भी दोनों देशों का सीमान्त इसी रेखा को स्वीकार किया गया था।

भारत और तिब्बत के अटूट सम्बन्ध

उत्तरी हिमालय सीमाबन्दी हो जाने के बाद भी भारत और तिब्बत का वही सम्बन्ध बना रहा जो सहस्त्रों वर्षों पहले से चला आ रहा था। उसका कारण यह था कि तिब्बत हमारा पड़ोसी ही नहीं है, उसके साथ हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक एकता भी बनी रही। दोनों देशों की यह धार्मिक और सांस्कृतिक थाती इतनी स्थायी तथा विशाल है कि उसको सहज में ही विलुप्त एवं विस्मृत नहीं किया जा सकता है। दोनों देशों की यह एकता हमारे रक्त सम्बन्धों

भारत के उत्तरी सीमान्त के लोगों का तिब्बत के दक्षिणी सीमान्त के लोगों से प्राचीन सम्बन्ध रहा है। गढ़वाल, कुमाऊँ और बिहार के उत्तरी सीमान्तों के निवासी लोगों की मंगोल मुखा-कृति से स्पष्ट ही यह विदित होता है कि इन जातियों का घनिष्ठ रक्त सम्बन्ध रहा है। ये जातियाँ मुख्यतः यक्ष, दरद, किरात, किन्नर और नाग थे। इन जातियों के वंशज आज भी गढ़वाल, कुमाऊँ और सिक्किम में परिवर्तित जाति भेदों के रूप में वर्तमान हैं। न केवल आकृति या स्वरूप की दृष्टि से बल्कि भाषा की दृष्टि से भी इन जातियों में पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है। यही समानता भारत के उत्तरी सीमान्त के लोगों की नेपाल के लोगों से भी है। उसका कारण यह है कि एक समय था, जब कि उक्त जातियाँ उत्तरी हिमालय के पूर्व-पश्चिम के सुदूर भू-भाग गिलगिट से लेकर आसाम तक फैली हुई थीं।

यदि पूर्व में आसाम और पश्चिम में गिलगित के भू-भागों को छोड़ भी दिया जाय तो गढ़वाल के उत्तरी सीमान्त नीती, माणा और नैलंग की घाटियों में बसनेवाली लगभग ५ हजार से अधिक मंगोलमुख जनसंख्या के लोग हर प्रकार तिब्बती दिखाई देते हैं। इस भोटान्त प्रदेश में लोगों का पैतृक व्यवसाय भेड़ पालना, ऊन कातना ऊनी वस्त्र तैयार करना और अपनी भेड़ों से माल ढोना रहा है। इन पथरीली घाटियों में व्यवसाय का कोई दूसरा साधन नहीं है।

इन भोटान्त लोगों का परम्परा से तिब्बत के साथ वैवाहिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। धार्मिक दृष्टि से ये लोग ब्राह्मणों

कलिम्पांग से ग्यानची तक के मार्ग पर बने डाकघरों, तारघरों, पड़ावों और डाक बंगलों पर हाल तक भारत का अधिकार रहा। इसी प्रकार ग्यान्चीके सैनिक आवास में भारतीय सेना की एक चौकी विगत चार सौ वर्षों से कायम रही।

—वाचस्पति गैरोला

● चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो !

—कहते हैं हिमालय जिसे दिल्ली का किला है
भारत को जनमभूमि की झोली में मिला है
आजाद हिमालय बिना दिल्ली न रहेगी
तुम लालकिला और हिमालय को मिला लो
इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो

—स्व० 'नेपाली'

—पहाड़ों के शिखर ज्वालामुखी बन कर धधकते हैं,
हिमालय की हवा तूफान बन कर सनसनाती है
पिघल छल-छल विकल नदियाँ उलट ऊपर चढ़ी जातीं,
कहीं मिल कर उफनती है, कहीं सागर बनाती हैं,

लहू से धुल गए तो बन गए इस्पात के पत्थर,
इन्हें गोली कि जैसे फूल टकराया कहीं तन से,
इन्हें गोला कि जैसे मार दी हो गेंद बच्चे ने,
इन्हें बारूद जैसे ढेर-ढेर अबीर बरसा हो,
हमारे देश का त्योहार दीवाली नहीं केवल,
यहाँ फागुन दहकता है, यहाँ मौसम बदलता है!
हमारी बीन से संग्राम के भी स्वर निकलते हैं!

—आनन्द मिश्र

चीनी लौटे, किन्तु अपने अत्याचार और बर्बरता की अमिट निशानी छोड़ गये! युद्धविराम घोषणा के पश्चात् भी विश्वासघातियों ने भारतीय सैनिकों पर गोलियाँ चलायीं। उन्होंने बौद्ध मठों को भी अपवित्र किया और गरीबों के खाने-पीने के सामान से लेकर गहने-कपड़े तक लूट ले गये। जो सामान वे नहीं ले जा सके उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। भेड़ें, मुर्गियाँ, बकरियाँ खा गये और सैकड़ों खच्चर ले गये। गाय और सूअरों को भी उदरस्थ करने से वे नहीं चूके। अस्पताल भी अछूता नहीं बचा। बोमडिला में एक लड़की चीनी सैनिक को देख डर कर भागी तो उस मासूम को गोली का शिकार बनाकर हत्यारे चीनी ने अपनी वीरता (!) दिखलायी। तार के खम्भों को उखाड़ डाला और तांबे के तार चुरा ले गये।

चीनियों की बर्बरता की कहानी नेफा निवासी भुला न सकेंगे।

—कपोती शांति का संदेश देती है जमाने को,
जरूरत पर मगर यह बाज बन कर भी झपटती है;
यहाँ के तृण किसी तलवार से काटे नहीं जाते,
अगर मचलें कभी तो ये दुधारा काट सकते हैं;

सुनो, इस देश की मिट्टी अजब तासीर वाली है,
यहाँ का आदमी पैदा कफन के साथ होता है;
हिमालय पर चला कर गोलियाँ तुम ने इधर छेड़ा,
उधर डल-झील का पानी पचाना चाहते हैं वे,
कहें क्या, खून के ही घूँट पी कर रह गया भारत,
इसी संकोच में सब घाव सीकर रह गया भारत—
कि इस के हाथ गाँधी की कसम अब तक रही बाँधे!
मगर यह आज का भारत, अजी बिल्कुल नया भारत,
प्रलय के और इसके क्रोध में अंतर नहीं कोई,
इसे अब छेड़ने का अर्थ कायाकल्प ही जानें,
इसे अन्याय से कितनी घृणा है, यह बताएगा,
समय के शीष पर इसके चरण फिर से मचलते हैं!
हमारी बीन से संग्राम के भी स्वर निकलते हैं!

—ग्रानंद मिश्र

—नेफा के मोर्चे पर जो विफलताएँ मिलीं उसकी जाँच के पश्चात् प्रतिरक्षामंत्री श्री यशवन्तराव बलवन्त राव चह्वाण ने लोकसभा में एक वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा—"सेला और बोमदिला में जो कुछ हुआ, उससे हमें गहरा धक्का पहुँचा। पर यह याद रखना चाहिए कि शक्तिशाली सेनाओं वाले कुछ अन्य देशों को भी लड़ाई के आरम्भिक दिनों में कुछ ऐसी ही विफलताओं का सामना करना पड़ा। हमलावर को कुछ लाभ रहता ही है, विशेषकर उस स्थिति में जबकि हमला अचानक हुआ हो और इसकी पहले से अच्छी तैयारी कर ली गई हो। अब हम सतर्क हैं और हमारी तैयारी भी अच्छी है। साथ-साथ ही इस जाँच से हमें अपनी सुरक्षात्मक तैयारियों को मजबूत करने और सैन्य संचालन में मदद मिलेगी।"

—पहरुआ हाथ में बंदूक लेकर मोर्चे पर है,
यही विश्वास उसकी धमनियों में जगमगाता है,
वही जीवित रहा है व्योम का बनकर सितारा जो
हथेली पर लिए सिर कर्ज मिट्टी का चुकाता है!
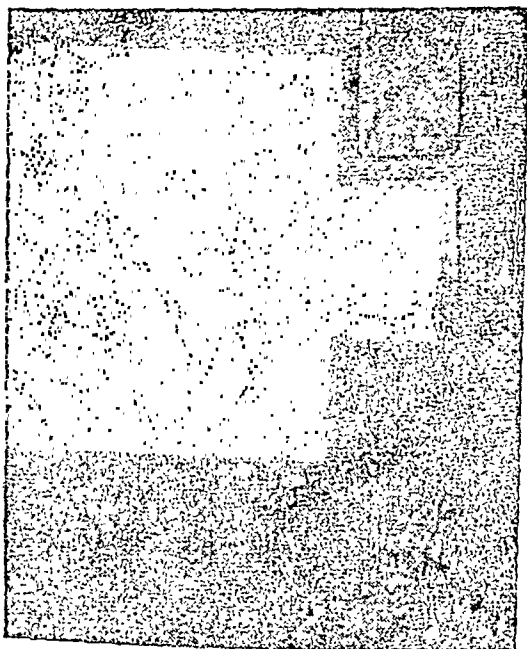
'नेफा' क्षेत्र में तैनात दृढ़संकल्पी सेनापति मानिक शा जो शत्रुओं को आगे नहीं बढ़ने देने का प्रण किये सीमा पर डटे हैं।

जवानी होश में आई कि फिर तेवर तने इसके,
नया भारत-कि फिर फौलाद के सपने बने इसके,

नया भारत, हिमालय हो गया अभिमान फिर इसका !
नया भारत कि इसमें रात होती ही नहीं है अब,
नया भारत कि इसमें फिर लहू-से दीप जलते हैं !

—आनन्द मिश्र

—मानवता के शत्रु अहंकारी चीनी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली हिटलर की नीति पर विश्वास करते हैं। चीन का हिटलर माओ त्से तुङ का कहना है, सीमा रेखाओं का निर्धारण मानचित्र बनाने वाले नहीं, बल्कि सेनाएँ करती हैं। अपनी सेना की विशाल संख्या पर उसे घमण्ड है। यद्यपि उनके लिए वह पूरा भोजन देने में असमर्थ है। उसकी सेना के पूरे सैनिकों के लिए न पूरे हथियार हैं, न कपड़े और जूते। फिर भी उन्हें युद्ध की आग में झोंकने के लिए वह उतावला है।

सारी दुनिया अणुयुद्ध को मानवता के लिए अभिशाप मानती है, किन्तु चीनी नेता उसे अपने लिए वरदान मानते हैं। जब रूस और अमरीका अणुयुद्ध की लपेट में शक्तिहीन हो जायँगे तो चीन शक्तिशाली माना जायगा। जब दुनिया के लोग अणुयुद्ध की आग में भस्म हो जायँगे तब भी चीनी अपनी विशाल जनसंख्या के कारण कुछ न-कुछ जरूर बच जायँगे! फिर तो पूँजीवाद (!) का नामो-निशान मिट जायगा! सारी दुनिया पर एकतन्त्र साम्राज्य स्थापित करेंगे बचे हुए चीनी और तभी उनके लिए वर्तमान पूँजीवादी प्रणाली से हजारों गुनी बेहतर सभ्यता और वास्तविक सुन्दर भविष्य का उदय होगा!

—आजादी अभी पायी है, खोने के नहीं हैं
इतिहास में फिर दास हम होने के नहीं हैं
जब तक न हटे चीन, हम सोने के नहीं हैं

गाँधी की कसम है कहीं पलकें न झुका लो
इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो!

—स्वर्गीय 'नेपाली'

◯ लक्ष्मीबाई : खूब लड़ी मर्दानी वह तो

भारत शूर-वीरों का देश है। इसके चप्पे-चप्पे पर भारतीय वीरों ने अपने लहू से साहस, त्याग और वलिदान की अमर कहानियां लिख दी हैं। किन्तु स्वतन्त्रता-संग्राम में प्रातःस्मरणीया झांसी की रानी लक्ष्मी वाई ने जिस वीरता और शौर्य का परिचय दिया, वह अपूर्व है।

सन् १८५७ के विप्लव की आग झांसी में भी फैली। लक्ष्मीवाई ने झांसी की राजसत्ता की वागडोर अपने हाथों में ले ली। उसके पूर्व अंग्रेजों ने विधवारानी लक्ष्मीवाई से झांसी का राज्य छीन लिया था और उन्हें गुजर-वसर के लिए पांच सौ रुपये मासिक मिलते थे।

झांसी विप्लवकारियों का केन्द्र वन गया था। विप्लव की आग दवाने और झांसी को पुनः अधिकार में करने के लिए ह्यू रोज नामक एक अंग्रेज सेनापति आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के साथ झांसी पहुंचा। झांसी के किले पर ह्यू रोज की सेना की तोपें गोले उगलने लगीं।

घमासान लड़ाई छिड़ गई। कई दिनों तक लड़ाई का उतार-चढ़ाव देखा गया। दोनों तरफ के वहुत आदमी मारे गये। लक्ष्मीवाई अपने सैनिकों को वीरता के लिए पुरस्कृत करती रहीं, किन्तु किसी देश-द्रोही कायर विश्वासघाती ने अंग्रेजों की विजय के लिए, दरवाजा खोल दिया।

वह अपने सुफ़ेद घोड़े पर सवार, जिधर निकल जाती ह्यू रोज के सैनिकों के मुण्ड तड़पते नजर आते। अपने घोर्य से लक्ष्मीबाई ने शत्रुओं को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया, किन्तु अपने विशाल संख्या के कारण शत्रु अजेय रहे।

शत्रुओं ने लक्ष्मीबाई के किले को चारों ओर से घेर लिया। विजय-प्राप्त करना असम्भव देख, लक्ष्मीबाई ने कालपी जाने का निश्चय किया। वहाँ पेशवा राव की सेना पड़ी थी।

तात्याटोपे से लक्ष्मीबाई ने सैनिक सहायता के लिए अनुरोध किया था और वह सेना लेकर झाँसी की ओर चल पड़े थे, किन्तु राह में ही ह्यू रोज ने उनकी सेना पर आकस्मिक आक्रमण करवा दिया जिससे उनके बहुत आदमी मारे गये और उन्हें विवश होकर लौट जाना पड़ा था।

ह्यू रोज लक्ष्मीबाई को पकड़ने की ताक में था और लक्ष्मीबाई उसकी पकड़ से बाहर निकलने की युक्ति निकाल रही थी।

आधीरात का समय था। किले की दीवार के किनारे-किनारे अंधेरे में एक महावत हाथी लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ लक्ष्मीबाई के सुफ़ेद घोड़े के साथ उनकी एक सहेली खड़ी थी।

महावत ने हाथी को खड़ा कर दिया।

लक्ष्मीबाई किले की दीवार पर से हाथी पर कूद पड़ीं।

वह मर्दाना भेष में थी—अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित। उनकी पीठ पर उनका दत्तक पुत्र दामोदरराव था जिसे वह कपड़े से कसकर बाँध रखी थीं।

ह्यू रोज के सैनिकों की आँखों के सामने बिजली कौंध गई। जिसे वह पकड़ने का अवसर ढूंढ रहे थे, वह लक्ष्मीबाई अपने घोड़े पर सवार उनके बीच से तीर की तरह निकल गई।

गाँधी की कसम है कहीं प
इन चीनी लुटेरों को हिमाल

लक्ष्मीबाई : खूब लड़ी मर्दानी

भारत शूर-वीरों का देश है। इसके चप्पे-च
अपने लहू से साहस, त्याग और बलिदान की
हैं। किन्तु स्वतन्त्रता-संग्राम में प्रातःस्मरणीय
बाई ने जिस वीरता और शौर्य का परिचय दिय

सन् १८५७ के विप्लव की आग झाँसी में
झाँसी की राजसत्ता की बागडोर अपने हाथ
अंग्रेजों ने विधवारानी लक्ष्मीबाई से झाँसी
और उन्हें गुजर-बसर के लिए पाँच सौ रुपये मासि

झाँसी विप्लवकारियों का केन्द्र बन गया
दबाने और झाँसी को पुनः अधिकार में करने
एक अंग्रेज सेनापति आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के साथ
के किले पर ह्यू रोज की सेना की तोपें गोले उगल

लक्ष्मीबाई क्रुद्ध सिंहनी की तरह ह्यू रोज के तोपचियों की ओर लपकीं। तोपची तोप छोड़ कर, भाग गये।

ह्यू रोज घबड़ाया नहीं। लक्ष्मीबाई की वीरता और शौर्य से आतंकित अपने सैनिकों को उसने ललकारा और स्वयं लक्ष्मीबाई को पकड़ने की योजना के साथ वह उनकी ओर बढ़ा।

लक्ष्मीबाई, ह्यू रोज की रणचातुरी समझ गईं। उसकी तोपों की मार से लक्ष्मीबाई के सैनिकों की संख्या बहुत कम रह गई थी। ह्यू रोज पर वह विजय नहीं पा सकतीं—यह उन्होंने अनुमान लगा लिया। अकस्मात् ह्यू रोज के अधिकांश सैनिक लक्ष्मीबाई पर टूट पड़े।

लक्ष्मीबाई ने घोड़े की लगाम दांतों से पकड़ी और दोनों हाथों से तलवार चलाती हुई शत्रुओं के सिर उछालने लगीं। उनकी वीरता से ह्यू रोज आश्चर्यचकित रह गया।

२२ वर्षीया लक्ष्मीबाई रणस्थल में युद्ध करते हुए, देवलोक से उतरी हुई शक्ति की देवी प्रतीत हो रही थीं। ह्यू रोज उन्हें जीवित पकड़ने के लिए पूर्ण प्रयत्न करने लगा।

मरने पर शत्रु उनकी लाश का स्पर्श न कर सकें—इस निश्चय के साथ लक्ष्मीबाई शत्रु सेना को चीरते-फाड़ते रौंदते हुए निकल गईं।

ह्यू रोज हाथ मलता रह गया।

सुरक्षा को सबल बनाने की दृष्टि से लक्ष्मीबाई ने एक किले व अधिकार में रहना आवश्यक समझा। वह विप्लवी नेताओं के सा ग्वालियर पहुंचीं।

ग्वालियर-नरेश जयाजीराव सिंधिया को लक्ष्मीबाई की ओर से लिख गया पत्र मिला। पत्र में विदेशियों से भारत की मुक्ति के संग्राम में सहयोग के लिए सिंधिया से अनुरोध किया गया था। सिंधिया अपनी सेना के साथ चल पड़े।

लक्ष्मीबाई को सूचना मिली कि सिंधिया सहायता करने के बदले

लेफ्टिनेण्ट वोकर अपने घुड़सवार सैनिकों के साथ लक्ष्मीवाई को पकड़ने के लिए बढ़ा।

लक्ष्मीवाई ने घोड़े को सरपट छोड़ दिया।

घोड़े पर सवार अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उनकी सहेलियाँ और कुछ विश्वासी सैनिक भी उनका साथ दे रहे थे।

सवेरा हुआ। लक्ष्मीवाई एक गाँव में रुक गईं। वह गाँव से दूध मँगा कर, दामोदर राव को पिला रही थीं। अकस्मात् उनकी निगाह वोकर और उनके घुड़सवारों पर पड़ी।

लक्ष्मीवाई ने अपनी सहेलियों को चेतावनी दी। स्वयं दामोदर राव को पीठ पर बाँध घोड़े पर सवार हो गईं।

वोकर उनके पास पहुँच गया। और वह वार करना ही चाहता था कि लक्ष्मीवाई की तलवार से घायल हो गिर पड़ा। उनकी सहेलियों और वोकर के सैनिकों में तलवार की लड़ाई होने लगी।

लक्ष्मीवाई अपनी तलवार के करतब दिखाने लगीं। देखते-देखते वोकर के साथी पीछे हटने के लिए मजबूर हो गये। लक्ष्मीवाई ने अपने घोड़े का मुँह कालपी की ओर किया। घोड़ा वायुवेग से उड़ चला।

आधी रात को वह कालपी पहुँच गईं, किन्तु उनके वफादार घोड़े ने, लगातार १०२ मील तक दौड़ते रहने के वाद, वहाँ पहुँचते ही दम तोड़ दिया।

वहाँ विप्लवकारियों के नेता तात्या टोपे और नाना साहब के भतीजे मिले। लक्ष्मीवाई को वड़ा वल मिला। उनकी सहायता से वह पुनः झाँसी को स्वतन्त्र करने का निश्चय कर बैठीं। ह्यू रोज उन्हें परास्त करने स्वयं सेना लेकर कालपी पहुँच गया।

युद्ध छिड़ गया। लक्ष्मीवाई खूब लड़ीं। जिधर वढ़तीं उधर शत्रुओं के सर गिरते नजर आते। ह्यू रोज की सेना के पाँव उखड़ने लगे, किन्तु, उनकी तोपों के गोलों ने लक्ष्मीवाई के वहुत-से सैनिकों को उड़ा दिया।

लक्ष्मीबाई क्रुद्ध सिंहनी की तरह ह्यू रोज के तोपचियों की ओर लपकीं। तोपची तोप छोड़ कर, भाग गये।

ह्यू रोज घबड़ाया नहीं। लक्ष्मीबाई की वीरता और शौर्य से आतंकित अपने सैनिकों को उसने ललकारा और स्वयं लक्ष्मीबाई को पकड़ने की योजना के साथ वह उनकी ओर बढ़ा।

लक्ष्मीबाई, ह्यू रोज की रणचातुरी समझ गई। उसकी तोपों की मार से लक्ष्मीबाई के सैनिकों की सख्या बहुत कम रह गई थी। ह्यू रोज पर वह विजय नहीं पा सकतीं—यह उन्होंने अनुमान लगा लिया। अकस्मात् ह्यू रोज के अधिकांश सैनिक लक्ष्मीबाई पर टूट पड़े।

लक्ष्मीबाई ने घोड़े की लगाम दाँतों से पकड़ी और दोनों हाथों से तलवार चलाती हुई शत्रुओं के सिर उछालने लगीं। उनकी वीरता से ह्यू रोज आश्चर्यचकित रह गया।

२२ वर्षीया लक्ष्मीबाई रणस्थल में युद्ध करते हुए, देवलोक से उतरी हुई शक्ति की देवी प्रतीत हो रही थीं। ह्यू रोज उन्हें जीवित पकड़ने के लिए पूर्ण प्रयत्न करने लगा।

मरने पर शत्रु उनकी लाश का स्पर्श न कर सकें—इस निश्चय के साथ लक्ष्मीबाई शत्रु सेना को चीरते-फाड़ते रौंदते हुए निकल गईं।

ह्यू रोज हाथ मलता रह गया।

सुरक्षा को सबल बनाने की दृष्टि से लक्ष्मीबाई ने एक किले का अधिकार में रहना आवश्यक समझा। वह विप्लवी नेताओं के साथ ग्वालियर पहुँचीं।

ग्वालियर-नरेश जयाजीराव सिंधिया को लक्ष्मीबाई की ओर से लिखा गया पत्र मिला। पत्र में विदेशियों से भारत की मुक्ति के संग्राम में सहयोग के लिए सिंधिया से अनुरोध किया गया था। सिंधिया अपनी सेना के साथ चल पड़े।

लक्ष्मीबाई को सूचना मिली कि सिंधिया सहायता करने के बदले

विप्लवकारियों को तोपों से उड़ाने आ रहे हैं। वह आग हो उठीं। अपने सैनिकों के साथ ग्वालियर-नरेश को सबक सिखाने मैदान में उतर पड़ीं। उन्हें क्या मालूम था कि सिंधिया सोने के पिंजड़े के भीतर ही सुख मानने वाले पंछी हैं!

युद्धभूमि में पहुँचते ही लक्ष्मीबाई सिंधिया की सेना पर बाज की तरह झपटीं। वायुवेग से घोड़ा दौड़ाती हुई वह तोपों के पास पहुंचीं। दो-चार तोपचियों के सर उड़ा सकीं, शेष सर पर पाँव रख कर भागे।

तोपों के मुँह ठण्डे हो गये और लक्ष्मीबाई ने बहुत शीघ्र सिंधिया के हौसले पस्त कर दिये। लक्ष्मीबाई का ग्वालियर के किले पर अधिकार हो गया। सिंधिया भागते हुए, अपने मित्र अंग्रेजों के पास आगरा पहुंच गये।

लक्ष्मीबाई को किला पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ग्वालियर का किला विप्लवकारी नेताओं का गढ़ बन गया।

ह्यूरोज चौंका। वह एक विशाल सेना लेकर ग्वालियर पहुंच गया। उसके साथ उसके मित्र सिंधिया भी थे। सिंधिया की सेना विप्लवकारी दल से मिल गई थी। वहाँ की जनता भी लक्ष्मीबाई का पूर्ण समर्थन र रही थी। ह्यूरोज ने अफवाह फैला दी, अंग्रेजी सेना विप्लवकारियों दमन के लिए नहीं आई, किन्तु सिंधिया की सहायता के लिए आई है।

सिंधिया ह्यूरोज के इशारे पर, गुप्त रूप से अपने सैनिकों के सर-रों के सामने अपना दुखड़ा सुनाकर, उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करने लगे। विप्लवकारियों में फूट का बीज बोने के कुप्रयत्न से वे बाज न आये।

लक्ष्मीबाई रणक्षेत्र में बिजली की तरह चमकने लगीं। दोनों हाथों तलवार चलाकर, वह शत्रुओं के मुण्ड लुढ़काने लगीं। अपने हतोत्सा- सैनिकों को प्रोत्साहन भी देती जातीं। दिन भर वह शत्रुओं के खून

से अपनी तलवार को नहलाती रहीं। ह्यू रोज के सैनिक लाख प्रयत्न करने पर भी किले पर अधिकार नहीं कर सके।

दूसरे दिन की लड़ाई में जनरल स्मिथ अपनी सेना के साथ लक्ष्मीबाई को परास्त करने पहुंचा। लक्ष्मीबाई की अद्भुत वीरता के सामने उसे मुंह की खानी पड़ी।

बुद्धिमती लक्ष्मीबाई पिछली लड़ाइयों के अनुभव से सतर्क हो गई थी। वह हमेशा अपनी वीरांगना सहेलियों को अपने साथ रखतीं। उनकी सहेलियाँ युद्ध भूमि में भी शत्रुओं को गाजर-मूली की तरह काटते हुए, उनकी सहगामिनी बनी रहती थीं। वह जीवित या मरणोपरान्त—किसी तरह भी—शत्रुओं से अपने शरीर का स्पर्श नहीं कराना चाहती थीं।

लड़ाई का तीसरा दिन था—१८ जून १८५८। ह्यू रोज ने जैसे लक्ष्मीबाई पर विजय प्राप्त करने का प्रण ठान लिया। उसने सुबह होते ही जनरल स्मिथ से किले पर चढ़ाई करा दी। स्वयं भी बड़ी सेना के साथ मैदान में पहुँच गया।

लक्ष्मीबाई पुरुष के वेश में अपनी सहेलियों के साथ मैदान में उतर आईं। शत्रुओं की लाशें तड़पने लगीं। ह्यू रोज के सैनिकों पर उनके शौर्य का आतंक छा गया।

सुयोग्य सेनापति ह्यू रोज सांड़नी सवारों के साथ आगे बढ़ा। इसके पूर्व उसकी तोपों ने लक्ष्मीबाई की सेना को बड़ी क्षति पहुंचायी थी। उसने लक्ष्मीबाई के चारों ओर उनके सैनिकों को रौंद डालने का प्रयत्न किया।

अचानक लक्ष्मीबाई की ओर की तोपों की गर्जन बन्द हो गई। उनके बहुत सैनिक मारे गये। सिंधिया के सैनिक अंग्रेजों की ओर मिल गये थे। लक्ष्मीबाई को चिन्ता न थी। वह दुश्मनों के सिर उतारने

में मशगूल थीं। दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए वीरांगना लक्ष्मीबाई की वीरता देख ह्यूरोज विस्मित था।

अचानक लक्ष्मीबाई की उनकी एक सहेली ने परिस्थिति की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। लक्ष्मीबाई को चारों ओर से अंग्रेज सैनिकों ने घेर लिया था। उनके व्यूह के बीच दस-बीस अंगरक्षकों के अतिरिक्त उनकी दो सहेलियाँ भर बच गई थीं।

लक्ष्मीबाई ने अपने घोड़े को एड़ लगाई और शत्रुदल के घेरे को तोड़ती हुई तीर की तरह निकल गईं। उनकी सहेलियों और वीर सरदारों ने भी उनका साथ दिया।

अंग्रेज सवारों ने उनका पीछा किया।

लक्ष्मीबाई घोड़ा दौड़ाती हुई बढ़ी जा रही थीं। सामने एक नाला मिला। घोड़ा अड़ गया। लक्ष्मीबाई उसे नाला पार करने के लिए, उत्तेजित करने लगीं, किन्तु वह पीछे की ओर ही हटने लगा।

लक्ष्मीबाई का घोड़ा युद्ध में गोली लगने से मर चुका था। यह नया घोड़ा ग्वालियर राज्य के अस्तबल का था।

अंग्रेज-सवार आ पहुँचे।

लक्ष्मीबाई की एक सहेली को गोली लगी। वह परलोक सिधार गई। क्रुद्ध लक्ष्मीबाई शेरनी की तरह झपट पड़ीं। और गोली मारने वाले को दो टुकड़े कर डाला।

कुछ और अंग्रेज सवार आ पहुँचे। उस समय लक्ष्मीबाई ने देखते-देखते कई शत्रुओं को मार गिराया।

अंग्रेज-सवारों से लड़ते-लड़ते उनके साथियों की संख्या भी कम होने लगी।

अंग्रेज सवारों ने लक्ष्मीबाई को चारों ओर से घेर लिया। लक्ष्मी- प्रहारों को बचाती हुई वार करने लगीं। अब वह अकेली ही

लड़ रही थीं। उनके सभी साथी लड़ते-लड़ते प्राण खो चुके थे। अंग्रेजों की संख्या भी बहुत कम हो गई थी।

एक अंग्रेज ने लक्ष्मीबाई के सिर पर पीछे से तलवार मारी। लक्ष्मीबाई के सिर का दाहिना भाग कट गया। एक आंख बाहर निकल पड़ी।

लक्ष्मीबाई ने पीछे मुड़ कर, उसे एक ही वार में समाप्त कर दिया। दूसरे अंग्रेज ने उसी समय छाती में किरच भोंक दी। लक्ष्मीबाई ने उसे भी अपनी तलवार का शिकार बनाया।

खून के फव्वारे निकल पड़े। लक्ष्मीबाई अन्तिम सांस तक शत्रुओं को मौत के घाट उतार कर वीरोचित कर्त्तव्य पूरा करना चाहती थी। वह शत्रुओं की ओर शेरनी की तरह झपटीं।

लक्ष्मीबाई का अद्भुत शौर्य देख शेष अंग्रेज भाग गये।

वह शिथिल पड़ने लगीं। उसी समय उनका एक विश्वास पात्र सेवक रामचन्द्र राव आ पहुँचा। पास ही बाबा गङ्गादास की एक कुटिया थी। रामचन्द्र राव लक्ष्मीबाई को वहीं ले गया।

वहाँ उनके प्राण से देह का नाता टूट गया।

लक्ष्मीबाई के आदेशानुसार रामचन्द्रराव ने पास में ही चिता सजायी और उनका शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया।

५ याद कर लेना कभी हमको भी भूले भटके

—दिल फिदा करते हैं, कुरबान जिगर करते हैं
पास जो कुछ है वह माता की नजर करते हैं
खाने वीरान कहाँ देखिए घर करते हैं
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं

—विस्मिल

विशाल भारत को मुट्ठी में रखने के लिए, अंग्रेजों ने कूटनीति का सहारा लिया। अपनी कूटनीति के बल पर, उन्होंने अधिकांश भारती

राजाओं और नवाबों को अपने पक्ष में कर लिया और १८५७ की विद्रोहाग्नि दबा दी।

आग दब गई। किन्तु बलिदानी वीरों का लहू राख के भीतर अंगारे की तरह दहकता रहा। सन् १८९४ ई० में राख से एक चिनगारी बाहर निकली। दामोदरचापेकर और बालकृष्णचापेकर नामक सहोदर भाइयों ने एक संघ स्थापित किया। उनके संघ का मुख्य उद्देश्य था—देश के युवकों का मनोबल ऊँचा करना, उनके हृदय में देशभक्ति और स्वतन्त्रता के प्रति अनुरक्ति के लिए प्रेरणा देना।

इस संघ का नाम था—'चापेकर-संघ।'

चापेकर-संघ के प्रयास से जनवरी, १८९७ ई० में 'शिवाजी दिवस' मनाया गया। लोकमान्य बालगंगाधर 'तिलक' 'केसरी' पत्र द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जागरण का मन्त्र फूंकने लगे—'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'

केसरी में अंग्रेजी शासन के शासनाधिकारियों द्वारा जनता पर किये गये अत्याचारों का वर्णन और उग्रवादी लेख छपते थे। युवकों में नव-जीवन का संचार होने लगा। उनके खून में उबाल आने लगा।

दो अत्याचारी अंग्रेज अधिकारियों (मि० रैण्ड और उनके सहकारी आयर्स्ट) को दामोदर चापेकर ने मार डाला। हत्या के अपराध में उन्हें फांसी की सजा मिली।

'चापेकर' को गिरफ्तार करवाने में दो भारतीय, इनाम के लोभ में मुखबिर बन गये थे, उन्हें चापेकर-संघ वालों ने मार डाला। संघ के चार सदस्यों को फांसी के तख्ते पर लटकाया गया और एक को दस वर्ष के लिए कठोर कारावास का दण्ड मिला।

फांसी के तख्तों पर, स्वाधीनता के लिए आतुर युवकों का जो लहू ... तो नयी चेतना का उदय हुआ। लोकमान्य 'तिलक' का 'केसरी' ...रने लगा तो उन्हें राजद्रोह के अपराध में जेल में बन्द कर दिया गया।

अंग्रेजी शासन एक बार चौंक उठी। उसने देश भर में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। श्यामकृष्ण वर्मा देशभक्ति और स्वतंत्रता-प्रेम के दिवाने बनकर, इङ्गलैण्ड पहुंच गये। वहाँ वर्माजी ने 'इण्डियन होम रूल सोसाइटी, की स्थापना की और भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने के लिए 'इण्डियन सोशलिस्ट' नामक एक पत्र प्रकाशित कर, प्रचार करने लगे।

श्यामकृष्ण वर्मा से प्रेरणा पाकर श्री विनायक दामोदर सावरकर इङ्गलैण्ड पहुंच गये। भारत मे युवकों से स्वतन्त्रता-प्राप्ति के प्रयत्नों मे सहयोग पाने के लिए, सावरकर जी ने 'मित्र-मेल' नामक एक समिति बनायी थी जिसके सचालन का भार अपने छोटे भाई गणेश दामोदर सावरकर पर डाल गये।

लण्डन के 'इण्डिया-हाउस' से प्रेरणा-प्राप्त कर, जो देशभक्त भारत लौटे उन्होने देश भर में 'गुप्त-संगठन' का विस्तार किया। लेखकों की कलम तलवार बन गई। पत्र-पत्रिकाओं से नवजागृति का सन्देश मिलने लगा।

दिसम्बर, १६०७ मे छोटे लाट साहब (बंगाल) ट्रेन द्वारा मेदनीपुर जा रहे थे। बम का धड़ाका हुआ। कई डब्बे पटरी से उतर गये। किन्तु लाट साहब बच गये।

२३ दिसम्बर, १६०७ को बी० सी० एलेन नामक एक अंग्रेज मेजिस्ट्रेट पर, एक स्टेशन की भीड़ के भीतर से किसी ने रिवॉल्वर का फायर किया। एक पादरी को किसी ने गोली मार दी। दिसम्बर में ही चन्दन नगर में सशस्त्र क्रान्ति के अग्रदूतों ने एक सभा का आयोजन करना चाहा, किन्तु फ्रेंच मेयर के आदेश से उस सभा पर रोक लगा दी गई। अप्रैल, १६०८ में फ्रेंच मेयर के बंगले मे बम का धड़ाका हुआ।

बङ्गाल के युवकों में नया जोश उमड़ता दिखाई पड़ा। सुशीलसेन नामक एक नवयुवक पुलिस की डाँट से उबल पड़ा। पुलिस से लड़ाई-

लिए, जेल में पहुँचे। अपनी माँ को देखकर, 'बिस्मिल' की आँखों में आँसू भर आये। उनकी वीर माता ने अपने हृदय के भावों को दवा कर कहा—'जीवन भर तो अपनी मातृभूमि के लिए रोते रहे, अब अन्तिम समय हमारे लिए आँसू वहा रहे हो?

'बिस्मिल' ने झट आँसू पोंछ डाले और कहा—'मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ कि कल मुझे फांसी होगी, किन्तु अग्नि के सामने घी का पिघलना स्वाभाविक ही है....।'

उनकी माँ ने गर्व से कहा—'मैं धन्य हुई जो मेरा वेटा देश के काम आया। कोई माँ मेरे जैसा वेटा जने तो जानूँ...।'

फांसी के लिए, जाते समय 'बिस्मिल' ने 'वन्देमातरम्' और 'भारत माता की जय' के नारे लगाए। उसके वाद उन्होंने कहा—

"मालिक तेरी रजा रहे, और तू-ही-तू रहे
वाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे
जव तक, कि तन में जान, रगों में लहू रहे
तेरा ही जिक्र यार, तेरी जुस्तजू रहे"

फाँसी के द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने वड़े रोप से कहा—"मैं विदेशी शासन का अन्त चाहता हूँ। और फांसी के तख्ते पर, गले में फाँसी की रस्सी पड़ने के पूर्व वे वोल उठे—

"अव न अगले बलवले हैं और न अरमानों को भीड़
एक मिट जाने की हसरत, बस दिले 'बिस्मिल' में है"

उनके शव के जुलूस में कई हजार गोरखपुर निवासी थे। जनता ने उनके शव पर, पुष्पों की वर्षा कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

—"वतन हमेशा रहे शाद काम और आजाद
हमारा क्या है अगर हम रहें-रहें न रहें"

अशफाकउल्ला खाँ वारसी 'हसरत' भी शाहजहाँपुर के रहनेवाले

और 'बिस्मिल' के बहुत अच्छे मित्र। इनकी रगों में भी देशभक्ति का खून बह रहा था। काकोरी-काण्ड में इन्हें भी प्राण-दण्ड मिला।

लखनऊ जेल में, इनके सामने आए पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट खाँ बहादुर। और उठे—"देखो अशफ़ाक़! तुम मुसलमान हो, हम भी मुसलमान हैं। हमें तुम्हारी गिरफ्तारी से बहुत रंज है। राम प्रसाद वगैरह हिन्दू हैं। उनका उद्देश्य हिन्दू सल्तनत क़ायम करना है। तुम पढ़े लिखे खानदानी मुसलमान हो। तुम कैसे इन काफ़िरों के चक्कर में आए!"

अशफ़ाक़ की आँखें लाल हो गयी। वे भड़क कर, बोले—"बहुत हुआ! ख़बरदार, ऐसी बात फिर कभी न कहिएगा। अव्वल तो पण्डित जी (श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल') वगैरह सच्चे हिन्दुस्तानी हैं, उन्हें हिन्दू सल्तनत, मिश्र राज्य या किसी भी किस्म की सल्तनत से सख़्त नफ़रत है। और आप जैसा कहते हैं, अगर वह सत्य भी हो, तो मैं अंग्रेजों के राज्य से हिन्दू राज्य ज्यादा पसन्द करूँगा। आपने जो उनको काफ़िर बतलाया, उसके लिए मैं आपको इस शर्त पर मुआफ़ी देता हूँ, कि आप इसी वक्त मेरे सामने से चले जायें।"

खाँ साहब की बोलती बन्द हो गयी।

फाँसी का फन्दा गले में पड़ने के पूर्व वे अपने देशवासियों के नाम एक सन्देश दे गये—

"*भारत माता के रङ्ग मञ्च पर अपना पार्ट अब हम अदा कर चुके।* हमने गलत सही जो कुछ किया, वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भावना से किया। हमारे इस काम की कोई प्रशंसा करेगा तो कोई निन्दा। किन्तु हमारे साहस और वीरता की प्रशंसा हमारे दुश्मनों तक को करनी पड़ी है।

क्रान्तिकारी बड़े वीर योद्धा और बड़े अच्छे वेदान्ती होते हैं। वे सदैव अपने देश की भलाई सोचा करते हैं। लोग कहते हैं कि हम देश को भयत्रस्त करते हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। इतनी लम्बी मियाद

झगड़े के कारण कलकत्ते के मैजिस्ट्रेट किंग्स फोर्ड ने सुशीलसेन को बेंत की सजा सुनायी ।

किंग्सफोर्ट की बदली मुजफ्फरपुर हुई और उसे बम से उड़ा देने के लिए, सुशीलसेन के साथियों में से दो नवयुवक—खुदीराम बोस और प्रफुल्लकुमार चाकी—मुजफ्फरपुर पहुँच गये ।

३० अप्रैल, १९०८ को उनके सामने से एक गाड़ी गुजरी जिसमें एक अंग्रेज अपनी पत्नी के साथ दिखाई पड़ा । गाड़ी पर बम फटा । नगर में सनसनी फैल गई ।

खुदीराम पकड़े गये, किन्तु उनका अभिप्राय सिद्ध न हुआ । गाड़ी में किंग्स फोर्ड नहीं, बल्कि एक अन्य अंग्रेज मिस्टर केनेडी थे । खुदीराम को फांसी के तख्ते पर, लटकना पड़ा और 'नन्दलाल' नामक एक गुप्तचर के प्रयत्न से मुकामा स्टेशन पर पुलिस के घेरे में पड़ने पर, प्रफुल्ल कुमार चाकी ने पिस्तौल से आत्महत्या कर ली ।

एक दिन मानिकतल्ले में पुलिस ने एक मकान पर छापा मारा । वह मकान क्रांतकारियों का अड्डा था । पुलिस ट्रकों पर बन्दूक-पिस्तौल कारतूस और बम बनाने के सामान उठा ले गयी । इस सिलसिले में ३४ युवक गिरफ्तार हुए जिसमें १५ को सजा मिली ।

कलकत्ते की ग्रे-स्ट्रीट में फिर बम का धड़ाका सुनाई पड़ा । मानिकत्तल्ला बमकाण्ड में नरेन गोस्वामी मुखबिर बन गया था । उसने क्रांतिकारी दल के बहुत-सारे रहस्य प्रकट कर दिए । कन्हाईलाल दत्त ने उसे मार डाला । कन्हाईलाल दत्त को फांसी की सजा मिली । नन्दलाल गुप्तचर भी गोली का शिकार हुआ जिसने प्रफुल्ल चाकी को मुकामा-स्टेशन पकड़वाने का प्रयत्न किया था ।

अलीपुर बम षडयन्त्र वाले मुकदमे के सरकारी वकील आशुतोष दास को चारुचन्द्र ने मारडाला । पुलिस के डिप्टी सुपरिंटेन्डेंट शमशुल

आलम को वीरेन्द्रनाथ दत्त गुप्त ने कलकत्ता हाई कोर्ट के दरवाजे पर पिस्तौल का निशान बनाया। उसे फाँसी हो गयी।

—"चलो वतन की राह पर कि तुम वतन की शान हो
वतन को तुम पे नाज है कि तुम वतन की जान हो
वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हों
खिलेंगे फूल उस जगह कि तू जहाँ शहीद हो"

ढाका-षडयन्त्र में ४४ आदमियों पर मुकदमा चला, जिनमें १५ को कठोर कारावास दण्ड मिला। प्रेस—एक्ट में कई पत्रों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। उसके बाद छिट-पुट घटनाएँ घटती ही रहीं।

सशस्त्र-विद्रोह के लिए जर्मन से शस्त्र मँगाने का प्रबन्ध किया क्रांतिकारियों ने। रहस्योद्घाटन हो गया। शस्त्रों से भरा जहाज बालेश्वर के निकट आने वाला था। यतीन्द्र नाथ मुखर्जी अपने पाँच साथियों के साथ जहाज आने की प्रतीक्षा करने लगे। अचानक पुलिस के एक सशस्त्र दस्ते ने उन्हें घेर लिया।

वीरवर यतीन्द्रनाथ मुखर्जी ने झटपट खाई खोदकर मोर्चा बनाया और दो दिनों तक पुलिस से युद्ध करते रहे। उन्होंने इतनी गोलियाँ बरसायीं कि पुलिस को उनके पास फटकने का साहस न हुआ। जब उनकी गोलियाँ समाप्त हो गईं, वे वहीं पुलिस की गोली से मारे गए।

उसकेबाद क्रांतिकारी-आन्दोलन की आग बुझती नजर आयी। किंतु कई वर्षों के पश्चात् वह काकोरी-काण्ड के रूप में फिर प्रकट हुई।

काकोरी—काड के नेता थे—श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'। उनके हृदय में देश के प्रति बड़ा प्रेम था। १८ वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने क्रांतिकारी जीवन में प्रवेश किया था। इनके राजनीतिक गुरु श्री सोमदेव थे।

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' को सेशन-कोर्ट से प्राण दण्ड मिला। फाँसी के एक दिन पूर्व उनके माता-पिता और छोटे भाई उनसे अन्तिम भेंट के

लिए, जेल में पहुँचे। अपनी माँ को देखकर, 'बिस्मिल' की आँखों में आँसू भर आये। उनकी वीर माता ने अपने हृदय के भावों को दबा कर कहा—'जीवन भर तो अपनी मातृभूमि के लिए रोते रहे, अब अन्तिम समय हमारे लिए आँसू बहा रहे हो?

'बिस्मिल' ने झट आँसू पोंछ डाले और कहा—'मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ कि कल मुझे फाँसी होगी, किन्तु अग्नि के सामने घी का पिघलना स्वाभाविक ही है....।'

उनकी माँ ने गर्व से कहा—'मैं धन्य हुई जो मेरा बेटा देश के काम आया। कोई माँ मेरे जैसा बेटा जने तो जानूँ...।'

फाँसी के लिए, जाते समय 'बिस्मिल' ने 'बन्देमातरम्' और 'भारत माता की जय' के नारे लगाए। उसके बाद उन्होंने कहा—

"मालिक तेरी रजा रहे, और तू-ही-तू रहे
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे
जब तक, कि तन में जान, रगों में लहू रहे
तेरा ही जिक्र यार, तेरी जुस्तजू रहे"

फाँसी के द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने बड़े रोष से कहा—"मैं विदेशी शासन का अन्त चाहता हूँ। और फाँसी के तख्ते पर, गले में फाँसी की रस्सी पड़ने के पूर्व वे बोल उठे—

"अब न अगले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़
एक मिट जाने की हसरत, बस दिले 'बिस्मिल' में है"

उनके शव के जुलूस में कई हजार गोरखपुर निवासी थे। जनता ने उनके शव पर, पुष्पों की वर्षा कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

—"वतन हमेशा रहे शाद काम और आजाद
हमारा क्या है अगर हम रहें-रहें न रहें"

—श्री अशफाकउल्ला खाँ वारसी 'हसरत' भी शाहजहाँपुर के रहनेवाले

थे और 'बिस्मिल' के बहुत अच्छे मित्र। इनकी रगों में भी देशभक्ति का लहू बह रहा था। काकोरी-काण्ड में इन्हें भी प्राण-दण्ड मिला।

लखनऊ जेल में, इनके सामने आए पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट खाँ बहादुर। बोल उठे—"देखो अशफाक! तुम मुसलमान हो, हम भी मुसलमान हैं। हमें तुम्हारी गिरफ्तारी से बहुत रंज है। राम प्रसाद वगैरह हिन्दू हैं। उनका उद्देश्य हिन्दू सल्तनत कायम करना है। तुम पढ़े लिखे खानदानी मुसलमान हो। तुम कैसे इन काफिरों के चक्कर में आए!"

अशफ़ाक की आँखें लाल हो गयीं। वे गर्जना कर, बोले—"बहुत हुआ! खबरदार, ऐसी बात फिर कभी न कहिएगा। अव्वल तो पण्डित जी (श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल') वगैरह सच्चे हिन्दुस्तानी हैं, उन्हें हिन्दू सल्तनत, मिश्र राज्य या किसी भी फिर्कावार सल्तनत से सख्त नफरत है। और आप जैसा कहते हैं, अगर वह सत्य भी हो, तो मैं अंग्रेजों के राज्य से हिन्दू राज्य ज्यादा पसन्द करूँगा। आपने जो उनको काफिर बतलाया, उसके लिए मैं आपको इस शर्त पर मुआफी देता हूँ, कि आप इसी वक्त मेरे सामने से चले जायें।"

खाँ बहादुर की बोलती बन्द हो गयी।

फाँसी का फन्दा गले में पड़ने के पूर्व वे अपने देशवासियों के नाम एक सन्देश दे गये—

"भारत माता के रङ्ग मञ्च पर अपना पार्ट अब हम अदा कर चुके। हमने गलत सही जो कुछ किया, वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भावना से किया। हमारे इस काम की कोई प्रशंसा करेगा तो कोई निन्दा। किन्तु हमारे साहस और वीरता की प्रशंसा हमारे दुश्मनों तक को करनी पड़ी है।

क्रान्तिकारी बड़े वीर योद्धा और बड़े अच्छे वेदान्ती होते हैं। वे सदैव [illegible] भलाई सोचा करते हैं। लोग कहते हैं कि हम देश [illegible] ऐसा नहीं है। इतनी लम्बी मियाद

तक हमारा मुकदमा चला, मगर हमने किसी एक गवाह तक को भय त्रस्त करने की चेष्टा नही की, न किसी मुखविर को गोली मारी। हम चाहते तो किसी गवाह, किसी खुफियापुलिस के अधिकारी या किसी अन्य ऐसे ही आदमी को मार सकते थे, किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं था। हम तो कन्हाईलाल दत्त, खुदीराम बोस, गोपी मोहन साहा आदि की स्मृति में फाँसी पर चढ़ जाना चाहते थे।

भारतवासी भाइयो! आप कोई हों, चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायी हों, परन्तु आप देश-हित के कामों में एक होकर योग

दीजिए। आपलोग व्यर्थ में लड़-झगड़ रहे हैं। सब धर्म एक है, रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परन्तु लक्ष्य सबका एक ही है...''

"बात तो जब है कि इस बात की जिद्दें ठानें
देश के वास्ते कुरबान करें सब जानें
लाख समझाये कोई एक न उसकी मानें
मुंतजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को"

—हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में एम. ए. के छात्र श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी ने हँसते-हँसते मातृभूमि की बलिवेदी पर, फाँसी की रस्सी को चूमा। काकोरी-काण्ड में इन्हें भी प्राण दण्ड मिला था।

इनका कहना था, "अर्थ शास्त्र वर्तमान युग का शास्त्र है। जिसको अपने देश की आर्थिक अवस्था और उसके सभी अंगों का तुलनात्मक ज्ञान नहीं है, उसके लिए 'देश-देश' रटना व्यर्थ है। देश-सेवकों को अर्थशास्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पर्याप्त ज्ञान होना बहुत जरूरी है।"

फाँसी के पूर्व श्री राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी ने अपने एक मित्र के पत्र में लिखा था—

"देश की बलिवेदी पर हमारे प्राणों के चढ़ने की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! जीवन क्या है? मृत्यु की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! इसलिए मनुष्य मृत्यु में दु:ख और भय क्यों माने? वह तो नितान्त स्वाभाविक अवस्था है—उतना ही स्वाभाविक जितनी, प्रातःकालीन सूर्य का उदय होना। यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाया करता है, तो मैं समझता हूँ कि मेरी मौत व्यर्थ न जायगी।"

"हम सरेदार जो वशद शौक घर करते हैं
ऊँचा सर क़ौम का हो नजर ये सर करते हैं
सूख जाए न कहीं पौधा ये आजादी का
खून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं"

'काकोरी षड्यन्त्र केस' में फाँसी के तख्ते पर लटकने वाले ठाकुर रोशनसिंह अपनी वीरता, संयमी स्वभाव और दृढ़निश्चयी होने के कारण राजपूती शौर्य के प्रतीक थे। उन्होंने फाँसी के एक सप्ताह पूर्व अपने एक मित्र को पत्र लिखा—"मेरी मौत खुशी का बायस होगी। दुनिया में पैदा होकर मरना जरूर है।....दो साल से मैं बाल-बच्चों से

तक हमारा मुकदमा चला, मगर हमने किसी एक गवाह तक को भय त्रस्त करने की चेष्टा नही की, न किसी मुखबिर को गोली मारी। हम चाहते तो किसी गवाह, किसी खुफियापुलिस के अधिकारी या किसी अन्य ऐसे ही आदमी को मार सकते थे, किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं था। हम तो कन्हाईलाल दत्त, खुदीराम बोस, गोपी मोहन साहा आदि को स्मृति में फाँसी पर चढ़ जाना चाहते थे।

भारतवासी भाइयो! आप कोई हों, चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायी हों, परन्तु आप देश-हित के कामों में एक होकर योग

दीजिए। आपलोग व्यर्थ में लड़-झगड़ रहे हैं। सब धर्म एक है, रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परन्तु लक्ष्य सबका एक ही है..."

"बात तो जब है कि इस बात की जिद्दें ठानें
देश के वास्ते कुरबान करें सब जानें
लाख समझाये कोई एक न उसकी मानें
मुंतजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को"

—हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में एम. ए. के छात्र श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी ने हँसते-हँसते मातृभूमि की बलिवेदी पर, फाँसी की रस्सी को चूमा। काकोरी-काण्ड में इन्हें भी प्राण दण्ड मिला था।

इनका कहना था, "अर्थ शास्त्र वर्तमान युग का शास्त्र है। जिसको अपने देश की आर्थिक अवस्था और उसके सभी अंगों का तुलनात्मक ज्ञान नहीं है, उसके लिए 'देश-देश' रटना व्यर्थ है। देश-सेवकों को अर्थशास्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पर्याप्त ज्ञान होना बहुत जरूरी है।"

फाँसी के पूर्व श्री राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी ने अपने एक मित्र के पत्र में लिखा था—

"देश की बलिवेदी पर हमारे प्राणों के चढ़ने की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! जीवन क्या है? मृत्यु की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! इसलिए मनुष्य मृत्यु में दु:ख और भय क्यों माने? वह तो नितान्त स्वाभाविक अवस्था है—उतना ही स्वाभाविक जितनी, प्रातःकालीन सूर्य का उदय होना। यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाया करता है, तो मैं समझता हूँ कि मेरी मौत व्यर्थ न जायगी।"

"हम सरेदार जो वशद शौक घर करते हैं
ऊँचा सर क़ौम का हो नजर ये सर करते हैं
सूख जाए न कहीं पौधा ये आजादी का
खून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं"

'काकोरी षड्यन्त्र केस' में फाँसी के तख्ते पर लटकने वाले ठाकुर रोशनसिंह अपनी वीरता, संयमी स्वभाव और दृढ़निश्चयी होने के कारण राजपूती धीर्य के प्रतीक थे। उन्होंने फाँसी के एक सप्ताह पूर्व अपने एक मित्र को पत्र लिखा—"मेरी मौत खु...
दुनिया में पैदा होकर मरता जरूर है।

उठो वीरो, किरणका लो निमन्त्रण आज आया है।

बहुत एहसान उन हमलावरों का मानना होगा,
हमें जो आज गहरी नींद सोते से जगाया है,
बहुत दिन से रहे हम शांत सागरकी तरह, पर अब—

हमारे देश ने अपने लहू को आजमाया है।

वतन आजाद है अपना, इसे आजाद रखना है,
कठिन कुर्बानियाँ करके इसे हमने कमाया है,
अदावत के इरादे से इधर कोई नहीं आये,

शहीदों ने लहू से सींचकर इसको सजाया है।

समय चुपचाप रहने का नहीं, दुश्मन से जा कहदो-,
वतन के वास्ते हर फूल को गोली बनाया है,
फसल को लह-लहाकर देश की जय बोलना होगा,

बिगुल फूँको, हिमालय ने हमें इस दम बुलाया है।
उठो वीरो, किरण का लो निमन्त्रण आज आया है।

—राजमणि राय 'मणि'

राष्ट्रीय प्रतीक्षा

भारतवासी जान चुके हैं, प्रांतीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि संकीर्णता देश की स्वतन्त्रता के लिए घातक है और राष्ट्रीयहित सर्वोपरि है। उनके मातृ-भूमि-भारत की सुरक्षा की जिम्मेवारी उनकी कार पर ही नहीं, उन पर भी है। जिस देश के लोग अधिक से त्याग और बलिदान के लिए तैयार नहीं रहते, वह देश गुलाम । है।

राष्ट्र-प्रेम से भरकर निज अन्तर का कोना-कोना
जागो भारत की तरुणाई नहीं आज है सोना—
तन-मन-धन सब कुछ दे देंगे भारत माँ के सम्मुख
दुश्मन से हम लेंगे लोहा, दे स्वदेश को सोना।

सत्य-अहिंसा से प्रियतर है हमें राष्ट्र की माटी
खेत बना है कुरुक्षेत्र, घर-आँगन हल्दी-घाटी
महलों का राणा लड़ता है, खाकर तृण की रोटी
देश रहे स्वाधीन, मरे हम, यही रही परिपाटी

—श्री नारायण कुँवर

भारत के वीर सैनिक सीमा पर खड़े हैं। वे दृढ़-प्रतिज्ञ हैं कि कपटी दुश्मनों की दाल नहीं गलने देंगे और लहू की आखिरी बूँद तक स्वतंत्रता की रक्षा में तत्पर रहेंगे।

—हिमगिरि में खून जम शोला बना है
हर सिपाही तोप का गोला बना है

—प्रेम नारायण 'प्रेम'

—खबर रखना, कोई गद्दार साजिश कर नहीं पाये
नजर रखना, कोई जालिम तिजोरी भर नहीं पाये
हमारी कौम पर तारीख तोहमत धर नहीं पाये
वतन-दुश्मन दरिन्दों के लिए ललकार हो जाओ !
वतन की आबरू खतरे में है होशियार हो जाओ
हमारे इम्तहाँ का वक्त है, तैयार हो जाओ !

—साहिर लुधियानवी

शहीद जोगिन्दर सिंह

शहीद मेजर शैतान सिंह